Chapter-1

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

प्रथम अध्याय

"बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के हिन्दी उपन्यासों की केन्द्रीय सोच एवं बदलते जीवन मूल्य"

साहित्य का विकास सदियों पुराना चला आ रहा है। साहित्य हमारी मनोवृत्तियों को तृप्त करता है। उसमें मानव हित-साधन की मधुर भावना है। भारतीय साहित्य की मुख्यतः निम्नलिखित विशेषताएँ है:-

१) हित साधन करना

२) मानव-मनोवृतियों को तृप्त करना

३) मानव-मनोवृतियों को उन्नत करना

जिस रचना में हित छपा हो,उसे साहित्य कहा गया है। साहित्य का मूल उद्‌देश्य हित प्रकाशन नहीं होना चाहिए, बल्कि वह उसमें छिपा रहना चाहिए। यह भावुक हृदय का कार्य है, कि उस हित को खोज निकाले। अनेक विद्वानों ने साहित्य की अनेक विशेषताएँ बताई है, परन्तु स्थूलतः हम प्रत्येक हित साधन करने वाली कृति को साहित्य कह सकते हैं। जिसकी सर्जना साहित्यकार की प्रतिभा से होती है।

साहित्य के इतिहास की घटनाएँ पुस्तकें होती है, जिसकी रचना और प्रकाशन की तिथियाँ साहित्य के विकास को समझने की कुँजी होती है। प्राचीन हिन्दी पुस्तकों के अभिलेख बहुत मुश्किल से मिलते हैं या मिलते ही नहीं, इसी कारण हिन्दी साहित्य के लेखन में अनेक मुश्किलें आती है। वर्तमान साहित्य एवं इनका प्रकाशन इन दुविधाओं से मुक्ति दिला रहा है। साहित्य के इतिहास में पुस्तकों की प्रकाशन तिथियों की प्रमाणिकता के साथ-साथ यह भी महत्वपूर्ण है, कि उससे जुडी विधा के विकास की धाराओं की सही पहचान की जाए।

उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण गद्य विधा है। साहित्य के विकास के साथ-साथ,इस गद्य-विधा का प्रार्दूभाव हुआ। हिन्दी साहित्य की उम्र लगभग १३० वर्ष हो चुकी है। हिन्दी उपन्यासों का सर्वप्रथम उपन्यास होने का गौरव 'लाला श्री निवास दास' के *'परीक्षा गुरू'* (१८८२) को दिया गया है। परन्तु बहुत से साहित्यविद् ने 'पं. गौरी दत्त' की *(देवरानी-जेठानी की कहानी)* को हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास माना है। उपन्यासों का उदय यथार्थवादी

चेतना की अभिव्यक्ति से जुडा हुआ है। जो बीसवीं सदी के पश्चात् पूर्ण रूप से विकसित हो चुका है। उपन्यासों के विकास क्रम को साहित्यकारों ने विभिन्न प्रकार से विभाजित किया है।

श्री गोपाल राय के अनुसार इसे निम्नलिखित चार भागों में बताया गया है:-

१) शैशवावस्था (१८७०-१८९०)

२) किशोरावस्था (१८९१-१९१७)

३) युवावस्था (१९१८-१९३६)

४) प्रौढावस्था (१९३७ से अब तक)

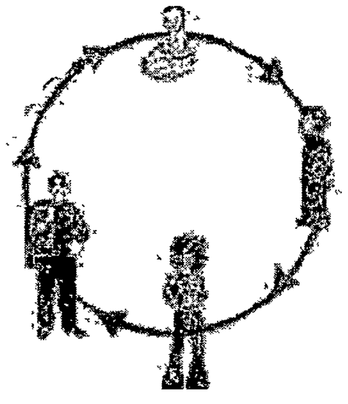

हिन्दी साहित्य का स्वरूप ग्राम, कस्बों से लेकर आधुनिकता से भरा हुआ है। प्रस्तुत शोध में इस विकास क्रम के महत्वपूर्ण मील-पत्थरों का सार व भाव निम्नलिखित चार भागों मे विभाजित किया गया है:-

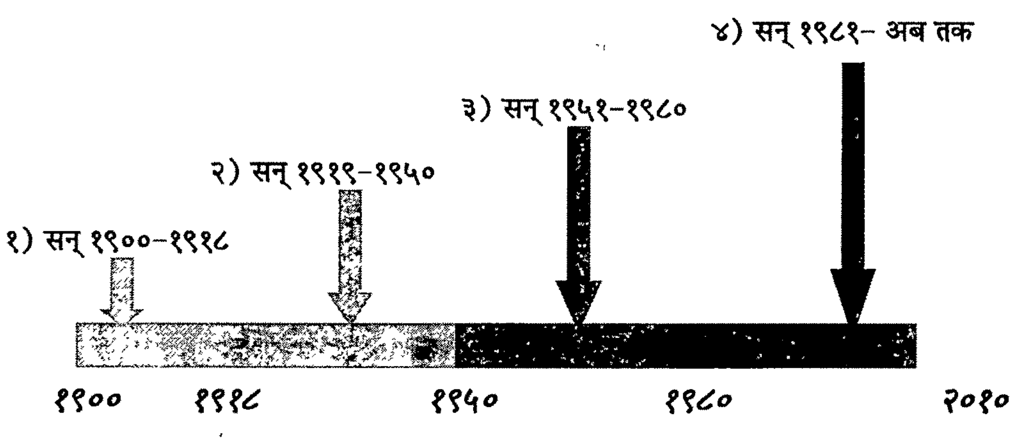

<u>**उपन्यासों का विकास क्रम**</u>

१.१ सन् १९०० ई. से १९१८ ई. तक के उपन्यास

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के शुरूआती समय के हिन्दी उपन्यासों में 'श्री देवकीनन्दन खत्री' का मुख्य योगदान है। 'खत्री जी' से पहले के उपन्यासकारों की रचनाएँ कठिन शब्दावली, शुद्ध लिपि एवं साहित्यिक भाषा के कारण आम जनता द्वारा समझने एवं पढने में कठिनाई होती थी। अत: यह उपन्यास आम जनता की पहुँच से बाहर होते थे। इन सभी कमियों का निराकरण 'खत्री जी' के उपन्यासों मे मिलता है। 'खत्री जी' के उपन्यासों की भाषा साधारण बोलचाल की भाषा से अधिक मिलती थी, अत: पाठकगणों को उसमें निहित सन्देश को समझने में आसान्नी हुई और उनके उपन्यासों ने लोकप्रियता के शिखर को छू लिया।

'देवकीनन्दन खत्री' ने उपन्यास विधा को एक नया आयाम दिया। उनका महत्पूर्ण उपन्यास *'चन्द्रकान्ता'* सन् १८८७ ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास आम जनता में लोकप्रिय होने वाला प्रथम उपन्यास था। इस उपन्यास में तिलिस्म, रोमांच, ऐतिहासिकता के साथ-साथ मध्यमवर्गीय लोगों के लिए सन्देश भी निहित था। *'चन्द्रकान्ता'* उपन्यास के प्रकाशित होते ही इसकी धूम मच गई थी। इसे देखते हुए 'खत्री जी' ने उपन्यास लेखन को ही अपना व्यवसाय बना लिया। इस उपन्यास से प्रभावित होकर उन्होंने उसी कथा तथा उन्हीं पात्रों के साथ *'चन्द्रकान्ता'* उपन्यास की दूसरी पीढी *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* की चौबीस भागों में रचना की। इन हिस्सों के प्रकाशन हेतू उन्होंने मई १८९४ ई. में *'उपन्यास लहरी'* नामक एक पत्रिका का प्रकाशन किया। इस पत्रिका के प्रथम अंक में ही उन्होंने *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* का प्रथम हिस्सा प्रकाशित कर दिया तथा इसका चौबीसवाँ और अन्तिम भाग सन् १९०५ ई. में प्रकाशित हुआ। *'चन्द्रकान्ता'* और *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* की लोकप्रियता को देखते हुए 'खत्री जी' ने सन् १९०७ ई. में एक नये उपन्यास *'भूतनाथ'* की रचना की। *'भूतनाथ'* की कथा भी उनके पहले उपन्यासों का ही विस्तार है।

'भूतनाथ' उपन्यास में भी रोमांच, तिलिस्म और राजा-रानी के रोचकता भरे प्यार को दिखाया गया है। *'भूतनाथ'* एक तिलिस्म पात्र है, जो *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* उपन्यास से ही लिया गया है । *'भूतनाथ'* की भी कई भागों में रचना हुई है, इसके पहले छह भागों का प्रकाशन 'खत्री जी' की पत्रिका *'साहित्य लहरी'* में ही किया गया है, इसी दौरान सन् १९१३ ई. में 'खत्री जी' का निधन हो गया। परन्तु 'खत्री जी' के उपन्यासों ने इतिहास में अभूतपूर्व परिवर्तन ला दिया

एवं हिन्दी उपन्यास साहित्य को नये आयामों की प्राप्ति हुई। 'खत्री जी' के पूर्व उपन्यास पढने वालों की संख्या अधिक नहीं थी, क्योंकि आम जनता अधिक संख्या में पत्र-पत्रिकाएँ नहीं खरीद पाते थे। उस समय के उपन्यासकारों का ध्यान इस विशाल पाढकगण की तरफ न होकर, उनका उद्देश्य हिन्दी साहित्य को भाषात्मक शैली से समृद्ध बनाना था। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उपन्यास की रचना की जाती थी। परिणामस्वरुप, भारतेन्दू युग का उपन्यास साधारण जन को अपनी तरफ आकृष्ट नहीं कर सका। उपन्यास और पाढकगणों मे बीच की इस दूरी को 'देवकीनन्दन खत्री' ने अपनी व्यवसायिक बुद्धि से सहज ही देख लिया। 'खत्री जी' ने बोलचाल में शब्दों तथा पढनियता और रुचि को पूर्णतः दिमाक में रखते हुए अपनी कथा-पुस्तकों की रचना की। 'खत्री जी' ने कथा, विचार, शिल्प भाषा, पुस्तक के आकार-प्रकार और सभी दृष्टियों से हिन्दी पाढकगणों की क्षमता और रुचि को ध्यान में रखते हुए उपन्यास लिखे। *'चन्द्रकान्ता'* में वीरेन्द्रसिंह और चन्द्रकान्ता के प्रेम की कहानी का वर्णन किया गया है। *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* मे वीरेन्द्र व चन्द्रकान्ता के पुत्रों की प्रेम कहानी को प्रस्तुत किया गया है। 'खत्री जी' के उपन्यासों में तिलिस्म की अद्‌भुत क्षमताएँ, चालाकियाँ, छद्‌मता, तमाशों का वर्णन मिलता है। कथानक की दृष्टि से *'चन्द्रकान्ता'* और *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* दोनों ही रोमांस की कोटि में आते हैं। इनमें प्रेम, साहस, शौर्य, कर्तव्यपरायणता, विश्वासघात, छल, धोखे आदि से सम्बन्धित प्रसंग है। ये सभी प्रसंग रोमांस की ही विशेषताएँ है। इनमें सामन्ती समाज के आपसी ईर्ष्या-द्वेष, लालच, काम-वासना, पारिवारिक षडयन्त्र आदि का चित्रण भी मिलता है। रोमांस की तरह भलाई और बदी के संघर्ष में भलाई की जीत और बुराई की हार ही इनके उपन्यासों में दिखाई गई है। 'खत्री जी' ने *'चन्द्रकान्ता'*, *'चन्द्रकान्ता सन्तति'* और *'भूतनाथ'* उपन्यासों के अलावा भी *'कटोरा भर खून'*, *'नौलखा हार'*, *'काजर की कोठरी'*, *' गुप्त गोदना'* (अपूर्ण) आदि अपराध प्रधान उपन्यासों की रचना की थी।

'देवकीनन्दन खत्री' के समय ही 'किशोरी लाल गोस्वामी' ने भी उपन्यासों की रचना की, जो ऐतिहासिक रोमांस पर आधारित थे।'गोस्वामी जी' ने १८९० ई. में *'हृदयधारिणी वा आदर्श रमणी'* नामक ऐतिहासिक रोमांसों की रचना की। जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन *'हिन्दुस्तान'* नामक पत्रिका के कई अंको में हुआ। एक उपन्यास के रुप में इसका प्रकाशन १९०५ ई. में हुआ। 'गोस्वामी जी' का दूसरा उपन्यास *'लवंगलता वा आदर्शबाला'* नामक ऐतिहासिक रोमांस भी १९०५ ई. में प्रकाशित हुआ। ये दोनों ही उपन्यास एक ही बडे उपन्यास

के दो भाग हैं। दोनों की कहानी बंगाल प्रान्त के राजा सिराजुद्दौला के समय की है। इनके अलावा 'गोस्वामी जी' के *'तारा वा क्षत्रकुलकमलिनी'* (१९०२), *'गुलबहार वा आदर्श भातृस्नेह'* (१९०६), *'कनककुसुम वा मस्तानी'* (१९०५), *'सुल्तान रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल'* (१९०५), *'मल्लिका देवी वा बंग सरोजिनी'* (१९०५), *'लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा'* (१९०६-१९१८), *'सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई'* (१९०९), *'लालकुँवर वा शाही रगंमहल'* (१९०९) आदि ऐतिहासिक रोमांस प्रकाशित हुए थे। 'गोस्वामी जी' ने भी 'देवकीनन्दन खत्री' की *'उपन्यास लहरी'* मासिक पुस्तक को अनुकरण कर मासिक पुस्तक हिन्दुस्तान का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसमें उनके पहले के लिखे उपन्यासों के साथ-साथ नवीन ऐतिहासिक और साधारण उपन्यास भी प्रकाशित हुए। 'गोस्वामी जी' का प्रमुख उद्देश्य अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में हिन्दू गौरव को स्थापित करना था। उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए, इसे स्वाभाविक ही माना जायेगा। इस समय हिन्दू समाज औरंगजेब जैसे कट्टर मुस्लिम शासकों के नियमों व शासन प्रणालियों से दबा हुआ था। हिन्दू समाज के उच्च वर्ग को अग्रेजों के हिन्दुस्तान आने से राहत महसूस हुई थी। परन्तु अंग्रेजी इतिहासकारों ने कुछ राजनीतिक कारणों से अन्तिम मुगल शासकों के चरित्र और शासन चलाने की क्षमता का जो वर्णन किया था, उससे हिन्दूओं के मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई। विद्यालयों में जो इतिहास पुस्तकों में पढाया जाता था, उसने हिन्दू छात्रों के मन में मुसलमानों के प्रति घृणा एव नफरत का भाव उत्पन्न कर दिया था। अग्रेजों ने अपनी पुस्तकों में मुस्लिम आलमों की चरित्रहीनता, निरंकुशता एवं असहिष्णुता का वर्णन किया है। 'गोस्वामी जी' ने अपने उपन्यासों के लिए अंग्रेज लेखकों व अफसरों की प्रकाशित यात्रा वर्णनों से कथ्य सामग्री लेकर उन्हीं को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। 'गोस्वामी जी' ने इतिहास में उस काल को अपने उपन्यासों का विषय चुना,जो कि हिन्दुओं के गौरव का पराभव काल था। इनकी नजर में राजनीति दृष्टि से कमजोर होते हुए भी हिन्दू राजाओं का चरित्र मुस्लिम बादशाहों की तुलना में अच्छा एवं उत्कृष्ट था। हिन्दुओं के गौरव की स्थापना के उत्साह में 'गोस्वामी जी' ने हिन्दू पात्रों की तुलना में मुसलमान पात्रों को निम्न, खुदगर्ज, छली, अविश्वासी, अयोग्य एवं चरित्रहीन के रुप में प्रस्तुत किया है। 'गोस्वामी जी' ने कपटी, धूर्त, क्रूर मुस्लिम पात्रों का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। 'गोस्वामी जी' ने रोमांस में मुसलमान स्त्रियों को भी चरित्रभ्रष्ट, कामुक, व्याभिचारिनी एवं निर्दयी बताया है। *'तारा'* उपन्यास के द्वारा पात्र की चरित्रहीनता, कपटीपन तथा धोखेबाजी को चित्रित किया है। *'तारा'* उपन्यास के पात्र सिराजुद्दौला के सम्बन्ध में 'गोस्वामी जी' का कहना

है, कि *'वह अत्यन्त इन्द्रियपरायण और हठधर्मी था, इसी से बंगाली प्रजा का मन अंग्रेजों की ओर हो गया था। यदि सिराजुद्दौला की ऐय्याशी और तुनकमिजाजी आसमान तक न पहुँच गई होती, तो कदाचित उसके समय तक बंगाल में कुछ गलत न होता। परन्तु जब लोगों को अपने घर की बहु–बेटियों की इज्जत बचाये रखने का कोई उपाय नहीं सूझा, तब लोग अंग्रेजों की शरण में गये और यह इस देश के लिए अच्छा नहीं हुआ।'* सिराजुद्दौला के सम्बध में यह धारणा अंग्रेजी इतिहासकारों ने फैलाई थी, जिसका शिकार 'गोस्वामी जी' ही नहीं, बल्कि अधिकतर पढे–लिखे लोग भी हो गए थे।

हिन्दी साहित्य में 'किशोरी लाल गोस्वामी ' पर 'रेनॉल्ड्स' के उपन्यासों का भी प्रभाव पडा है। हिन्दी में अनुवादित उनके उपन्यासों *'लॉयला', 'फाउस्ट', 'राइ हाउल प्लॉट', 'जोजेफ विलमट', 'उमरपाशा'* आदि सभी उपन्यास १९०० ई. के मध्य में प्रकाशित हुए थे। इन सभी उपन्यासों मे रहस्य, रोमांच, भाव–वर्णन आदि का गन्दा चित्रण किया गया है। इसी के प्रभाववश 'गोस्वामी जी' के *'आदर्श रमणी'* तथा *'तारा वा क्षत्रकुलकमलिनी'* उपन्यासों में काम–व्यापारों के वर्णन की अधिकता है। मुस्लिम काल में कई राजपूत राजाओं ने अपनी पुत्रियों का विवाह मुसलमान बादशाहों से किया था। 'गोस्वामी जी' को यह बात हिन्दू गौरव के विरोध मे लगी और उन्होंने अपने उपन्यासों में इस तथ्य को बिल्कुल ही नकार दिया। इतिहास के अनुसार अलाउद्दीन ने गुजरात पर जीत पाने के बाद वहाँ की रानी कमलादेवी को अपनी रानी बना लिया, परन्तु 'गोस्वामी जी' ने उपन्यास *'हीराबाई'* में बताया है, क़ि कमलादेवी के नाम पर हीराबाई नाम की एक मुसलमान लडकी अलाउद्दीन के पास भेज दी गई थी। *'सोना और सुगन्ध'* उपन्यास में अकबर को भी कूट राजनीतिज्ञ, विलासी, स्वार्थी शासक के रुप में बताया गया है। *'सोना और सुगन्ध'* उपन्यास में बताया गया है, कि अकबर की बेगम जोधाबाई दरअसल जौधपुर की राजकुमारी नहीं थी, बल्कि कश्मीर प्रान्त से खरीद कर लाई हुई एक तबाह हुए घराने की लडकी थी। अतः ऐसे वर्णनों से पता चलता है, कि 'गोस्वामी जी' आहत हिन्दू गर्व से भरिपूरित थे। 'गोस्वामी जी' ने एक अन्य उपन्यास *'लखनऊ की कब्र'* में उन्नींसवी शताब्दी के पूर्वाध युग का चित्र प्रस्तुत किया है। यह वह युग था, जब अंग्रेजी शासन में सभी तरफ लूट मची हुई थी। सबसे बडा लुटेरा कम्पनी सरकार थी, जो अवध के बादशाह, उसकी बेगमों और वजीरों को लूट रही थी। इसी के चलते वजीर एवं बादशाहों ने मिलकर अपनी प्रजा को लूटना प्रारम्भ कर दिया। अवध प्रांत के सभी गाँव, शहर तथा परगने बर्बाद होते जा रहे थे।

ग्रामीण किसान तथा कारीगार लोग भी तबाह हो रहे थे।'गोस्वामी जी' ने इस उपन्यास में इस ऐतिहासिक सच्चाई का वर्णन करके स्वयं को एक सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार के रुप में सिद्ध कर दिया।

'गोस्वामी जी' के समकालीन उपन्यासकारों में अन्य प्रमुख उपन्यासकार 'गंगाप्रसाद गुप्त' तथा 'जयरामदास गुप्त' हैं, जो लगभग उन्हीं के मार्ग पर चले हैं। 'गंगाप्रसाद गुप्त' के उपन्यासों में *'नूरजहाँ वा संसार सुन्दरी'* (१९०२), *'पूना में हलचल वा वनवासी कुमार'* (१९०३), *'वीर पत्नी'* (१९०३), *'कुँवरसिंह सेनापति'* (१९०३), *'वीर जयमल वा कृष्णकान्ता'* (१९०३) तथा *'हम्मीर'* (१९०४) नामक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। अधिकतर उपन्यासों में प्रेम और युद्ध, साहस और श्रृंगार जैसे प्रसंगों की ही प्रधानता है। 'गंगा प्रसाद' की एक विशेषता यह है, कि उन्होंने 'गोस्वामी जी' की तरह नख–शिख, विरह–मिलन आदि का वर्णन नहीं किया है। 'गंगा प्रसाद' की भाषा सरल तथा आम साधारण जन की भाषा है। 'गंगा प्रसाद' के उपन्यासों की केन्द्रीय सोच केवल मनोरंजन ही नहीं, बल्कि सच्चाई का चित्र प्रस्तुत करने वाला साहित्य हैं। 'गंगा प्रसाद गुप्त' की ही तरह 'जयरामदास गुप्त' भी इसी श्रेणी के उपन्यासकारों में आते हैं। इनके प्रमुख उपन्यासों में *'कश्मीर पतन'* (१९०७), *'किशोरी वा वीरबाला'* (१९०७), *'मायारानी'* (१९०८), *'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअली शाह'* (१९०८), *'कलावती'* (१९०९), *'प्रभात कुमारी'* (१९०९), *'वीर वारांगना'* (१९०९) आदि सम्मिलित है। इस सभी में कहानी के तौर पर युद्ध और प्रेम तत्वों की अधिकता पाई गई है। ऐतिहासिक वर्णनों के साथ–साथ 'जयरामदास जी' के उपन्यासों में रुमानी करिश्मों, चमत्कारों, प्रेम व्यापारों, तथा मुग्ध वर्णनों की भरमार है। अत: 'जयरामदास' 'देवकीनन्दन खत्री' और 'रेनॉल्ड्स' से भी प्रभावित है, इनकें उपन्यासों में भी हिन्दू पात्रों का चरित्र प्राय: सफेद और मुस्लिम पात्रों का चरित्र काले रुप में अंकित किया गया है।

'गोस्वामी जी', 'गंगाप्रसाद गुप्त' व 'जयरामदास जी' के अलावा भी अनेक ऐसे उपन्यासकार है, जिन्होनें ऐतिहासिक रोमांसों में भी अलौकिक वर्णनों, साहसिक कार्यों तथा प्रेम चित्रण का अंकन किया है। इनमें से 'बलदेव प्रसाद मिश्र', 'मथुरा प्रसाद शर्मा', 'ठाकुर प्रसाद खत्री', 'चुन्नीलाल खत्री' आदि है । इन सभी कथाकारों का मूल उद्देश्य हिन्दू वीरों की वीरता, उदार मन, धर्मपरायणता, हिन्दू औरतों के पतीव्रत्य, त्याग और वीरता का अंकन कर पाठकगणों

को हिन्दू गौरव की झाँकी दिखाना है। इन्होंने भी मुसलमान पात्रों को विलासी, क्रूर, धोखेबाज, कायर, स्वार्थी और व्याभिचारी रुप में पेश किया है।

ऐतिहासिक उपन्यासकारों के पश्चात् बीसवीं सदी के प्रथम पन्द्रह वर्षों के प्रमुख उपन्यासकारों में 'ब्रजनन्दन सहाय' का नाम प्रमुख है। इस समय में उन्होंने *'अद्‌भुत प्रायश्चित'* (१९०१), *'सौन्दर्यीपासक'* (१९११), *'राधाकान्त'* (१९१२) तथा *'अरण्यबाला'* (१९१५) आदि उपन्यासों की रचना की। 'ब्रजनन्दन सहाय' उन थोडे से उपन्यासकारों में हैं, जिन्होंने समसामयिक प्रमुख रुचिधारा की उपेक्षा की थी। इनके उपन्यासों में एक भी घटना-कार्य या वर्णन ऐसा नहीं मिलता, जिसमें निम्न-स्तरीय पाठकों की रुचि को ध्यान में रखा गया हो। इनके उपन्यासों में कामव्यापार के उत्तेजक वर्णनों को स्थान ही नहीं मिला है। अगर अध्ययन करें, तो यह पता चलता है, कि इनमें उपन्यासों में प्रेम का वर्णन शारीरिक धरातल पर कम और भावना के धरातल पर अधिक बलवान है। *'सौन्दर्यीपासक'* भगवान कृष्ण मुरारी जी को लेकर लिखा गया है। इन समस्त उपन्यासों में भक्ति, निष्काम कर्म, निर्गुण और सगुण भक्ति का विवेचन किया गया है। इसमें एक महात्मा के द्वारा पाप-पुण्य, ईश्वरीय दया व कृपा, भगवान जी की आश्चर्य चकित कर देने वाली लीला के साथ-साथ पूर्वजन्म तथा पुर्नजन्म का व्याख्यान भी मिला है। इस उपन्यास में श्रृंगार का वर्णन काफी मात्रा में किया गया है तथा कहीं भी काम वर्णन की अतिशियता नहीं है, बल्कि प्रेम की पवित्रता को अधिक महत्व दिया गया है। 'ब्रजनन्दन सहाय' एक निष्ठावान भक्त लेखक थे, अतः उनके उपन्यासों में हिन्दु समाज की भावनाओं, विचारों तथा रुचियों को प्रमुख स्थान मिला है। *'अद्‌भत प्रायश्चित'* उपन्यास में बच्चों को धर्मों की पुस्तक पढने, ईश्वर में आस्था रखने, सच्चाई के रास्ते पर चलने, झूठ नहीं बोलने आदि के उपदेश दिये गए हैं। *'अरण्यबाला'* उपन्यास में भी अन्य उपन्यासों की ही तरह धार्मिक उपदेश, कर्तव्य, दया, योग और भक्ति का ही मुख्य रुप से विवेचन किया गया है। इसमें एक आदर्श धर्म को मानने वाले हिन्दु के बारे मे जो कल्पना हो सकती है, उसका अंकन इस उपन्यास में हुआ है। *'अद्‌भुत प्रायश्चित', 'सौन्दर्यीपासक', 'राधाकान्त'* तथा *'अरण्यबाला'* आदि समस्त उपन्यासों मे स्वप्न एवं कल्पना द्वारा आने वाली घटनाओं की सूचना मिलती है। 'ब्रजनन्दन सहाय' के उपन्यासों में नवीन सामाजिक चेतना का भी उपदेश दिया गया है। जैसे कि *'अद्‌भुत प्रायश्चित'* में शराबबन्दी आन्दोलन का वर्णन किया गया है। *'सौन्दर्यीपासक'* उपन्यास में अनेक सामाजिक विवाह से सम्बन्ध रखने वाली कुप्रथाओं का, जैसे दहेज-प्रथा, वृद्ध विवाह,

अधिक फिजूलखर्ची आदि का विरोध किया गया है। *'राधाकान्त'* उपन्यास में भी पारसी सिनेमाघरों के जनता पर पडने वाले कूप्रभावों, जेलों तथा अस्पतालों में फैले भ्रष्टाचारों आदि के वर्णन किए गए हैं। अतः हम कह सकते हैं, कि 'सहाय जी' ने देश में आधुनिकतम प्रणाली के प्रसार, आधुनिक शिक्षा के प्रचार, व्यापार की शिक्षा, कृषि विकास, पशुपालन, जंगलों की रक्षा, आधुनिक यातायात के साधनों का विकास, हिन्दी भाषा की उन्नति, अनाथालयों एवं विधवा आश्रमों की स्थापना आदि विषयों को लेकर उपन्यासों की रचना की है।

'ब्रजनन्दन सहाय जी' के ही समय 'महता लज्जाराम शर्मा' ने उपन्यास साहित्य जगत में प्रवेश किया। 'महता लज्जाराम' ने अपने उपन्यासों में मनोरंजन, शिक्षा, प्रजा के सच्चे चरित्र पर विचार तथा चरित्र शोधन को अपने उपन्यास लेखन का विषय बनाया है। *'हिन्दू गृहस्थ' (१९०२), 'आदर्श दम्पत्ती' (१९०२), सुशीला विधवा (१९०७), आदर्श हिन्दू (१९१४-१५)* आदि उपन्यासों में हिन्दू धर्म के परम्परागत आदर्शों के अमर पात्रों की रचना करके पाठकगणों को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपदेश दिए हैं। 'महता जी' के उपन्यासों में भी 'सहाय जी' की ही तरह उपदेशों की इतनी अधिकता है, कि वे उपन्यास न रहकर उपदेशाख्यान बन गए हैं। 'महता लज्जाराम शर्मा' के उपन्यासों का एक ओर महत्वपूर्ण उद्धेश्य पाठकों का मनोरंजन भी है, पर वे अपने उपन्यासों में तिलिस्म, ऐय्यारी, जादू आदि अपराध-प्रधान तत्वों का वर्णंन नहीं करते ,बल्कि इनके स्थान पर इन्होंने श्रृंगार-चित्रण द्वारा अपने उपन्यासों को रोचक बनाने का भरपूर प्रयत्न किया है। सौन्दर्य का वर्णन करते समय भी लेखक ने अपने रसिक पाठकों को निराश नहीं किया। 'महता लज्जाराम' के सभी उपन्यास एक प्रकार से समस्यामूलक कहें जा सकते हैं, पर उनमें जिन समस्याओं का अंकन किया गया है, वे सनातनी हिन्दू समाज की ही समस्याएँ हैं। उपन्यासकार ने आधुनिक शिक्षा, विचारधारा और आचार-विचार आदि का विरोध कर हिन्दू सनातन सम्प्रदाय में प्रचलित धार्मिक सिद्धान्तों और व्यवहारों का समर्थन किया है। इन उपन्यासों में स्त्री शिक्षा और विधवा-विवाह का विरोध भी किया गया है। आदर्श हिन्दू उपन्यास में अन्तर्जातीय विवाह और विधवा के दोबारा विवाह करने का विरोध किया गया है। उपन्यासकार ने विधवा-विवाह को व्याभिचार के समान माना है। पतिव्रत की महिमा का प्रतिपादन 'महता जी' ने अपने प्रत्येक उपन्यासों में किया है। *'आदर्श दम्पत्ति'* उपन्यास में एक पात्र सुन्दरी का वर्णंन किया गया है, जो अत्यन्त कष्टप्रद स्थितियों से गुजरती हुई भी पातिव्रत्य का पालन करती है। *'बिगडे का सुधार'* (१९०७) उपन्यास की नायिका ने भी अपने पति के अनेक अत्याचार

सहन करके भी, उसे परमेश्वर के समान माना है। *'आदर्श हिन्दू'* उपन्यास में 'महता जी' ने आधुनिक शिक्षा प्राप्त लडकी की आलोचना की है। 'आदर्शहिन्दू' में एक ऐसी पतिव्रता स्त्री का अंकन किया है, जो पति के दाहिने अँगूठे की रोजाना पूजा अर्चना करती है, पति परमेश्वर जिस काम से खुश रहे, वही कार्य वह करती है और उसकी मन की इच्छा को ही अपनी खुशी समझती है। इस दृष्टि से 'महता लज्जाराम शर्मा' के उपन्यासों की केन्द्रीय सोच स्त्री द्वारा पातिव्रत्य का पालन करना है। वे सामाजिक दृष्टिकोण से पिछडी सोच रखने वाले कहे जा सकते हैं।

'किशोरीलाल गोस्वामी', 'ब्रजनन्दन सहाय' और 'महता लज्जाराम शर्मा' बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों के प्रमुख उपन्यासकार कहे जा सकते हैं। इन सभी के साथ-साथ अनेक लेखक भी थे जिन्होंने इस अवधि में सामाजिक उपन्यासों की रचना की थी। इन उपन्यासकारों में 'गोपाल गहमरी', 'अयोध्या सिंह उपाध्याय', 'चन्द्रशेखर पाठक', 'ईश्वरी प्रसाद शर्मा', 'लाला देवराज', 'गया प्रसाद मिश्र', 'गिरिजानन्दन तिवारी', 'कमला प्रसाद वर्मा', 'रामजी दास वैश्य', 'लक्ष्मी नारायण गुप्त', 'जैनेन्द्र', 'हजारी लाल', 'प्रियंवदा देवी', 'रामप्रसाद सत्याल', 'जयराम दास', 'गंगा प्रसाद गुप्त', 'शालिग्राम गुप्त', 'यशोदा देवी ', 'केदारनाथ', 'प्यारेलाल गुप्त', ' शिवनाथ शर्मा', 'चतुरसेन शास्त्री', 'पारसनाथ त्रिपाठी', 'विनोद शंकर व्यास', 'अघौरी राधा प्रसाद सिंह' आदि प्रमुख उपन्यासकार है ।

इन सभी उपन्यासकारों की प्रथम उल्लेखनीय विशेषता यह है, कि इन्होंने केवल समकालीन अविकसित रूचि रखने वाले पाठकों के मनोरंजन के लिए कौतूहल उत्पन्न करने वाली घटनाओं का इन्द्रजाल नहीं बनाया। इन्होंने उपन्यास लेखन में, 'ब्रजनन्दन सहाय' और 'महता लज्जाराम' का ही अनुगमन किया है। इनके उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू समाज की नाना प्रकार की समस्याओं का अंकन करना तथा धर्म के अनुरूप आदर्श चरित्र प्रस्तुत करना है। इन उपन्यासों में प्रमुख समस्याएँ स्त्री से ही जुडी हुई हैं। समाज में स्त्रियों का स्थान क्या हो, उन्हें किस प्रकार की शिक्षा दी जाए तथा उनके लिये किस प्रकार की आचरण-संहिता का निर्माण किया जाए, इस सम्बन्ध में इस काल के उपन्यासकार मुख्यत: दो भागों में बँटे हुए थे। एक तरफ तो कट्टर सनातनपन्थी हिन्दूओं का समाज था, जो स्त्री विषयक आदर्शों से दृढतापूर्वक बँधा हुआ था। इस वर्ग की स्त्री के विषय में धारणाा यह थी, कि स्त्रियों को हर हालत में पातिव्रत्य का पालन करना चाहिए। औरतों को कभी भी घर की चारदीवारी से बाहर

नहीं निकलना चाहिए, सास-ससुर तथा परिवार के अन्य सदस्यों की सेवा करनी चाहिए। बचपन में ही लडकियों का विवाह कर देना चाहिए तथा अगर कोई लडकी विधवा हो जाये, तो तमाम उम्र उसे विधवा-व्रत का ही पालन करना चाहिए, उसे कभी भी दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए। इस प्रथम मत को मानने वाले में 'महता लज्जाराम शर्मा', 'कमला प्रसाद वर्मा', 'गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य', 'शालिग्राम', 'प्यारेलाल गुप्त', 'चन्द्रशेखर पाठक' आदि प्रमुख है। इन सभी के उपन्यासों में विधवा-विवाह और स्त्री की आजादी का विरोध किया है। इसी मत को मानने वालों में 'गंगा प्रसाद गुप्त' के उपन्यास *'लक्ष्मी देवी'* (१९१०) में पर्दाप्रथा का समर्थन करते हुए कहा गया है, कि स्त्रियों को आजादी से पुरूषों के साथ मिलना-जुलना नहीं चाहिए। 'गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य' कृत *'भीषण भविष्य'* (१९०९) उपन्यास में बालविवाह का समर्थन किया है।

इसके विपरीत, दूसरी प्रकार के उपन्यासों में वे उपन्यास आते हैं, जिसमें विधवा-विवाह का समर्थन किया गया। इनमें 'कुँवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी' ने अपने उपन्यासों में बाल-विवाह व विधवा- विवाह का समर्थन तथा बचपन में किए गए विवाह के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। तत्कालीन हिन्दू समाज की अन्य विभिन्न विकृतियों का वर्णन भी द्वितीय मत को मानने वाले उपन्यासकारों ने किया है। 'रामफेरम सिंह' के उपन्यास *'चम्पा दूर्दशा'* (१९०४) में तिलक दहेज प्रथा की बुराइयों का अंकन किया गया हैं। इसमें बताया गया है, कि किस प्रकार लडकी वालों द्वारा दहेज नहीं देने पर उनकी कन्या को अनेक कष्ट सहने पडते हैं। इसी परम्परा के एक अन्य उपन्यासकार 'गिरिजानन्दन तिवारी' का *'सुलोचना'* (१९०६), 'जयरामदास गुप्त' द्वारा *'जहर का प्याला'* (१९०९), 'चन्द्रशेखर पाठक' द्वारा *'विरांगना रहस्य'* (१९१४-१८) आदि सभी उपन्यासों में वेश्यागमन से उत्पन्न उसके दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। 'कुँवर हनुमन्त सिंह रघुवंशी' द्वारा *'गृहस्थ चरित्र'* (१९०९), 'शिवनाथ शर्मा' कृत *'चंडूलदास'* (१९१४) आदि सभी उपन्यासों में वृद्ध के विवाह से उत्पन्न उसके कूपरिणामों का अंकन किया गया है। इन सभी उपन्यासों में हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन स्थान-स्थान पर हुआ है। सभी उपन्यासकारों ने कर्मफलवाद के सिद्धान्त का समर्थन किया है। इनके उपन्यासकारों में कही ईश्वर भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, तो कहीं सदाचार का, कहीं दयालुता का वर्णन, तो कहीं सत्य का अंकन किया गया है। इन उपन्यासों का प्रमुख उद्‌देश्य आदर्श पत्नी, आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श सेवक आदि का चित्रण करना है। 'केदारनाथ' ने भी अपने उपन्यास

'तारामती' (१९११) में एक अलग विषय पर चर्चा की। इसमें बेटी के लिए जब एक पिता दूल्हा खोजने जाता है, तो उसमें अनेक प्रकार के अवरोध सामने आते हैं, उन्हीं का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। 'पारसनाथ त्रिपाठी' कृत *'हमारी दाई'* (१९१४) उपन्यास में रोज के दैनिक जीवन की सच्चाइयों के प्रसंगों का बडा ही विश्वसनीय चित्रण किया है। यर्थाथ चित्रण की दृष्टि से इस काल के उपन्यासों में 'मन्नन द्विवेदी' द्वारा रचित *'रामलाल'* (१९१७) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी रचना सन् १९१४ ई. में हुई थी, किन्तु इसका प्रकाशन १९१७ ई. में हुआ ।

अत: अन्त में हम कह सकते हैं, कि इस समय में रोमांच, ऐतिहासिकता तथा रोमांस से भरपूर उपन्यासों की प्राप्ति हुई, तो दूसरी तरफ यर्थाथ धार्मिकता से ओतप्रोत उपन्यासों की भी रचना हुई। इस समय में हिन्दी उपन्यास को अपने कदमों पर खडा होने के लिए जमीन मिली। सर्वप्रथम 'देवकीनन्दन खत्री' ने हिन्दी उपन्यास को आधार प्रदान किया और उसे अपने कदमों पर खडा किया। 'भुवनेश्वर मिश्र', 'ब्रजनन्दन सहाय', 'महता लज्जाराम शर्मा' आदि कई गौण उपन्यासकारों ने उपन्यास को सामाजिक सच्चाई से जोडे रखने की कोशिश की, पर इस अवधि का उपन्यास साहित्य मुख्यत: कथा साहित्य ही बना रहा। इसी समय तिलिस्म, ऐय्यारी और जासूसी के रूप में परम्परागत कथा को एक नया आयाम प्रस्तुत हुआ। हिन्दी में इसका श्रेय मुख्यत: 'देवकीनन्दन खत्री', 'गोपालराम गहमरी' और गौण रूप में 'दुर्गाप्रसाद खत्री', 'जयरामदास गुप्त', 'गंगाप्रसाद' आदि को है। इन्होंने कथा को विज्ञान की नयी खोजों से जोडकर उसे बौद्धिक आयाम प्रदान किया। सामाजिक समस्याओं के चित्रण में इस समय के उपन्यासकारों ने पर्याप्त रूचि ली है। सच्चाई के प्रति उपन्यासकारों का झुकाव बढता दिखाई देता है। अब वे तिलिस्म ओर ऐय्यारी की दुनिया का त्याग कर अपनी आस-पास की जिन्दगी की और अधिक मुडते दिखाई देने लगें हैं।

१.२ सन् १९१८ ई. से १९५० ई. तक के उपन्यास

बीसवीं सदी के द्वितिय चरण में 'प्रेमचन्द' का योगदान प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी साहित्य में 'प्रेमचन्द' का प्रवेश *'सेवासदन'*(१९१८) नामक उपन्यास के साथ हुआ। सन् १९१५ ई. तक 'प्रेमचन्द' उर्दू साहित्य में कहानीकार के रूप में अपनी पहचान बना चुके थे। किन्तु उर्दू साहित्य में अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं थे। अत: तभी उनका उपन्यास *'सेवासदन'* आया,जो इससे पहले भी उर्दू में ही *'बाजारे हुस्न'* नाम से लिखा जा चुका था। जिस समय 'प्रेमचन्द' ने उर्दू में उपन्यास और कहानियाँ लिखना शुरू किया था, उस समय हिन्दी साहित्य में 'देवकीनन्दन खत्री जी' के ऐय्यारी व तिलिस्म प्रधान उपन्यासों का बहुत अधिक बोलबाला चल रहा था। उसके कुछ समय पश्चात् हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं में उनकी हिन्दी कहानियों की माँग बढने लगी और १९२४–२५ ई. तक तो वे हिन्दी साहित्य को पढने वाले पाठकगणों के सबसे प्यारे लेखक बन गए। 'देवकीनन्दन खत्री', 'किशोरी लाल गोस्वामी', 'गोपालराम गहमरी' आदि उपन्यासकारों के द्वारा तिलिस्म व ऐय्यारी अपराध प्रधान उपन्यासों से हिन्दी पाठकों का जो बडा सा वर्ग तैयार किया था, 'प्रेमचन्द' उन्हें अपराध एवं विरह–मिलन की कथाओं की दुनिया से बाहर निकलना चाहते थे। 'प्रेमचन्द' ने अपने रचनात्मक कौशल से इस समस्त पाठक वर्ग को अपना पाठक बना लिया।

'प्रेमचन्द' द्वारा अपने पहले उपन्यास *'सेवासदन'* में वेश्या के जीवन सम्बन्धी समस्याओं को प्रकाशित गया है। प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यासों में औरतों की हीन दशा का वर्णन किया गया है, किन्तु *'सेवासदन'*उपन्यास में पहली बार पति से विद्रोह करने वाली औरत का अंकन किया गया है। स्त्री को वेश्या के प्रति सहानुभूति दिखाते हुये भी इस उपन्यास में दिखाया गया है। *'सेवासदन'*उपन्यास की प्रमुख पात्र सुमन को कोई जबरन वेश्या नहीं बनाता है, बल्कि वह खुद ही वेश्यावृति को अपनाने का निर्णय करती है। सामाजिक विवशता व मजबूरियाँ उसे ऐसा करने पर विवश कर देती है। सुमन वेश्या बनकर अपने पति तथा समस्त समाज से अपने पर हुए अत्याचार का बदला लेती है। सुमन ने इस वृति को अपनाने के पश्चात् भी सदन नामक युवक को अपने प्यार में पडने से रोककर अपने सामाजिक विवेक का परिचय दिया। उसका सामाजिक विवेक समाज के लोगों के मुँह पर एक तमाचें के बराबर है। यह उपन्यास 'प्रेमचन्द जी' की क्रान्तिकारी सामाजिक दृष्टि का परिचायक है। सुमन का घर और समाज से विद्रोह,

दुखित, शोषित और एक दलित स्त्री का पुरूष समाज से विद्रोह का प्रतीक है। सुमन के चरित्र के माध्यम से 'प्रेमचन्द' ने इस उपन्यास में मजबूर स्त्री की कठोर समाज से टकराव की कहानी प्रस्तुत की है। एक स्त्री के लिये वेश्यावृति अपनाने के पश्चात् जीवन की मुक्ति का केवल एक ही विकल्प रह जाता है और वह है, ताउम्र अपनी इच्छाओं का दमन करना। वेश्याओं के उद्धार के लिये ही *'सेवासदन'* उपन्यास की स्थापना की, किन्तु यह स्थापना तात्कालिक सामाजिक स्थिति को देखते हुए कहीं–कहीं कमजोर पडती नजर आई। भारत में ही नहीं, बल्कि समस्त दुनिया में वेश्या समाज की स्थिति आज भी काफी हेय दृष्टि से देखी जाती है। अत: 'प्रेमचन्द' ने अपने उपन्यास के माध्यम से उन्हें उचित सम्मान दिलाने की भरपूर कोशिश की है, किन्तु उनकी कोशिश पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाई। *'सेवासदन'* के पश्चात् 'प्रेमचन्द जी' के कई और उपन्यास प्रकाशित हुए जिसमें *'प्रेमाश्रय'* उपन्यास का प्रकाशन सन् १९२२ ई. में हुआ। इसमें 'प्रेमचन्द' ने वेश्या के जीवन से हटकर अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन के चलते किसानों और जमींदारों के मध्य के सम्बन्धों का चित्रण किया है। इस काल की सबसे कडवीं सच्चाई यह थी, कि भारत अंग्रेजी शासन के आधीन था, जिनका सिर्फ एक ही लक्ष्य 'देश का शोषण' करना था । अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अंग्रेजी सरकार को किसी भी सीमा तक मानवीय मूल्यों का दमन करना पडे, उन्होंने किया। अंग्रेजी सरकार को जनता के अधिकारों की उपेक्षा तथा अत्याचार के किसी भी तरीके का प्रयोग करने में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं होती थी। इस आर्थिक शोषण में देश की जनता के परिश्रम का शोषण प्रमुख शोषण था, जिसके लिए अंग्रेजी सरकार ने प्रशासन तन्त्र, जमींदार वर्ग और साहूकार–महाजन समुदाय को अपना सहायक बना रखा था।

'प्रेमचन्द' के पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में देश की परतन्त्रता के यथार्थ का सही और तीखा बोध नहीं था। अधिकतर उपन्यासकारों ने तो अपनी रचनाओं में अंग्रेजी शासन का ही बढा–चढा कर गुणगान किया था। जिन उपन्यासकारों को ब्रिटिश शासन की असलियत का पता चल गया था, उन्होंने जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण और दमन की आलोचना तो की, किन्तु शासन का विरोध करने का साहस उनमें नहीं था। 'प्रेमचन्द' ने उचित साहस दिखाते हुए *'प्रेमाश्रय'* उपन्यास में अंग्रेजी सरकार का खुलकर विरोध किया है। देश की स्वतन्त्रता 'प्रेमचन्द' के लिये भावनात्मक तथा राष्ट्रप्रेम की समस्या ही नहीं थी, वरन् वह देश के आर्थिक शोषण एवं दमन से जुडी हुई थी। अंग्रेजी सरकार के शोषण से उत्पन्न हुई किसानों की गरीबी, उनकी दयनीय दूर्दशा

तथा अमानवीय अत्याचारों का चित्रण उन्होनें *'प्रेमाश्रय'* के साथ-साथ *'रंगभूमि' (१९२५), 'कायाकल्प' (१९२६), 'कर्मभूमि' (१९३२), 'गोदान' (१९३६)* आदि उपन्यासों में भी किया हैं। आर्थिक शोषण का एक प्रमुख रूप यह था, कि भूमि पर कर बहुत अधिक लगा दिया गया और जमींदारों व सरकारी अमलों की सहायता से उसे निर्दयतापूर्वक वसूला जाता था। अधिक कर देने के कारण किसान कर्ज में डूबे रहते थे और उनकी सम्पूर्ण धन-सम्पति महाजनों के कब्जे में होती जाती थी। 'प्रेमचन्द' के उपन्यास *'रंगभूमि', 'कायाकल्प'* और *'कर्मभूमि'* में सेवा करने की जो समितियाँ बनाई गई है, उनका प्रमुख उद्देश्य सरकार कर तख्ता पलटना नहीं, वरन् सामाजिक सुधार करना है। उनका प्रयास जमींदारों तथा सरकारी कर्मचारियों द्वारा अनुनय विनम्रता द्वारा किसानों की तकलीफों को खत्म करने का था। सरकार इसे भी बर्दाश्त नहीं कर पाती और इसका भी दमन करना प्रारम्भ कर देती है। 'प्रेमचन्द' ने इसी दमनकारी प्रभाव का अंकन किया है। उन्होंने उन सभी लोगों की विशेषकर पढें-लिखे लोगों की आलोचना की है, जो अपने स्वार्थवश जनता का शोषण और सरकार का समर्थन करते हैं। 'प्रेमचन्द' के अनुसार इन्हीं लोगों ने अंग्रेजी सरकार को शोषण करने का मौक़ा प्रदान किया है । इनके *'कर्मभूमि'* उपन्यास का विषय अन्य से थोडा सा अलग दिखाई देता है। इसमें अछूतों को मन्दिर प्रवेश नहीं दिए जाने तथा निम्न वर्ग के लोगों की रहने की समस्याओं को जनान्दोलन के रूप में चित्रित किया गया है। अपने अन्तिम उपन्यास *'गोदान'* में भी 'प्रेमचन्द' ने यहीं सोचा, कि जब तक शोषित किसान एक साथ संगठित नहीं होंगे, तब तक वे सरकारी शोषण एवं दमन का विरोध नहीं कर सकेगें। 'प्रेमचन्द' का समस्त उपन्यास साहित्य ब्रिटिश शासन के विरोध के साथ देशी, राजाओं, महाजनों, पूँजीपतियों, सरकारी अमलों, अंग्रेजी बुद्धिजीवियों, अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली आदि सभी का विरोध करता है। 'प्रेमचन्द' ने समकालीन मध्यवर्गीय समाज को, जो अनेक प्रकार की तर्कहीन सामाजिक मान्यताओं, रूढिवादी नैतिक धारणाओं से ग्रस्त था, उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखा। 'प्रेमचन्द' ने मध्यवर्ग के जीवन को अपना कथानक बनाकर *'रंगभूमि' (१९२५), 'कायाकल्प' (१९२६), 'निर्मला' (१९२७), 'गबन' (१९३१)* आदि उपन्यासों में भारतीय जीवन की महत्वपूर्ण सच्चाई, समाज और परिवार में नारी की स्थिति का अंकन किया है। उनके भारतीय नवजागरण में स्त्रीयों की परम्पराओं से चली आ रही स्थिति में सुधार का प्रश्न भी प्रमुख था। 'प्रेमचन्द' ने नारी सुधार को विषय बनाकर अपने उपन्यासों में पेश किया है। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती अधिकांश उपन्यासकार नारी की स्थिति के बदलाव के पक्ष में नहीं थे। अधिकतर कथाकार नारी विषयक परम्परागत आचार संहिता के पक्षधर थे, किन्तु 'प्रेमचन्द' ने

विशेषकर मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की नारी को लेकर उपन्यासों की रचना की। उन्होंने इन समस्याओं को अपने उपन्यासों में उकेरा। 'प्रेमचन्द' के समय में भी नारी स्थिति अच्छी नहीं थी, उसे न तो पारिवारिक सम्पत्ति में कोई हक मिलता था और न ही वह स्वतन्त्र रूप से अपनी जीविका अर्जित करने में समर्थ थी। इस समय की लडकियों को पढ़ाया नहीं जाता था, बल्कि उन्हें घर के चूल्हा-चौका में फंसा दिया जाता था। लडकियों की शादी हेतू दहेज जुटाना पडता था और अगर कुछ कमी रह गई ,तो विवाह के बाद उसे प्रताडित किया जाता था। विवाह के बाद समाज स्त्रीयों के प्रति अत्यन्त कठोर रूप अपना लेता था। सामाजिक बन्धनों और प्रथाओं की जंजीरों में जकडी स्त्री का जीवन गुलामी का ही एक रूप था। माता-पिता अपनी पुत्रियों के विवाह में दहेज नहीं जुटा पाने की असमर्थता के कारण किसी अयोग्य, निर्धन या वृद्ध व्यक्ति से उनका विवाह कर देते थे, जिससे लडकियों का जीवन नरक तुल्य बन जाता था। *'सेवासदन'* और *'निर्मला'* दोनों ही उपन्यासों में इस सच्चाई का मार्मिक अंकन किया है । वैचारिक रूप से अगर अध्ययन करे तो यह प्रतीत होता है, कि प्रेमचन्द नारी की सामाजिक स्थिति से असन्तुष्ट थे। वे समाज में नारी की सम्मानजनक स्थिति के पक्षघर थे। वे विधवा विवाह के प्रबल समर्थक ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने स्वयं एक विधवा से ही विवाह भी किया था। 'प्रेमचन्द' के उपन्यासों में विधवा विवाह के साथ-साथ, नारी त्याग और बलिदान की मंजिल पार करती हुई दिखाई पडती है। *'गोदान'* उपन्यास की मालती देशसेवा और समाज सेवा के लिए आजीवन विवाह नहीं करने का अडिग निर्णय लेती है। ये नारी का रूप 'प्रेमचन्द' के अलावा बहुत कम उपन्यासकारों की रचनाओं में दिखाई पडता है। अतः हिन्दी उपन्यास में 'प्रेमचन्द' के आगमन से सबसे उल्लेखनीय असर यह हुआ,कि ऐय्यारी-तिलिस्म और अपराध प्रधान तथा जासूसी उपन्यासों का दौर समाप्त हो गया तथा सामाजिक शोषण, स्त्री विषयक परम्परागत सोच में परिवर्तन, दलितोत्थान आदि नये विषयों पर उपन्यास लिखे जाने लगे।

प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों को प्रमुख रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम कोटि में वे लेखक आते हैं, जिन्होंने लगभग बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उपन्यास-लेखन प्रारम्भ किया था, इन लेखकों में 'गोपाल गहमरी', 'चन्द्रशेखर पाठक', 'मन्नू द्विवेदी गजपुरी' आदि के नाम उल्लेखनीय है। 'गोपालराम गहमरी' ने तो जासूसी एवं तिलिस्मी उपन्यासों की रचना की है। 'चन्द्रशेखर पाठक जी' ने 'गहमरी जी' के जासूसी उपन्यासों से हटकर उपन्यासों की रचना की। 'पाठक जी' के *'विचित्र समाज सेवक' (१९२०), 'आदर्श*

लीला' (*१९२१*), *'भारती'* (*१९२३*), *'मायापुरी'* (*१९२३*), *'अबला की आत्मकथा'* (*१९३३*) तथा *'सद्‌गुणी शीला'* (*१९३३*) आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। इस सभी उपन्यासों में पश्चिमी सभ्यता की तुलना में भारतीय सभ्यता को श्रेष्ठ बताया गया है, साथ ही अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के दोष, रूढ परम्परागत हिन्दू मान्यताओं के अनुरूप नारी-चरित्र के आदर्श (जैसे-पतिव्रत, सच्चरित्रता, धर्मपालन आदि) तथा हिन्दू समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। उनके एक उपन्यास *'मायापुरी'* में रूपक शैली में संसाररूपी मायाचक्र का वर्णन कर पाठकों को उससे बचने का उपदेश दिया गया है। इससे स्पष्ट है, कि उनका यह उपन्यास सच्चाई से दूर है। 'पाठक जी' का एक उपन्यास 'भारती' समकालीन यथार्थ के देशहित, समाज की सेवा, स्त्री जागृति, राष्ट्रीय चेतना आदि के उचित चित्रण के कारण अन्य उपन्यासों से बिल्कुल अलग हो गया है। इसी समय एक अन्य उपन्यासकार 'मन्नन द्विवेदी गजपुरी' ने इस काल में *'कल्याणी'* (१९२१) नामक उपन्यास लिखा, जिसमें बालविवाह, वृद्धविवाह, विधवाओं की दुर्दशा, कुशिक्षा, भारतीय समाज में पारस्परिक फुट आदि को रेखांकित किया गया है ।

दूसरी कोटि में उन उपन्यासकारों को रखा जा सकता है, जिनका रचनाकाल प्रेमचन्द युग तक ही सीमित है, इन उपन्यासकारों में 'जगदीश झा विमल', 'जी.पी. श्रीवास्तव', 'मदारी लाल गुप्त', 'चंडी प्रसाद ह्रदयेश', 'बेचन शर्मा उग्र', 'गिरिजादत्त शुक्ल', 'देवनारायण द्विवेदी', 'प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्त', 'शिवपूजन सहाय', 'परिपूर्णानन्द वर्मा', 'ऋषभचरण जैन', 'विश्वनाथ सिंह शर्मा', 'विश्वम्भरनाथ शर्मा कोशिक', 'जयशंकर प्रसाद', 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' आदि उल्लेखनीय है । इस काल के शुरूआत में ही 'जगदीश झा विमल' ने *'निर्धन कन्या'* (१९२०) नामक उपन्यास की रचना की, जिसमें आर्थिक दृष्टि से असमान परिवारों में विवाह-सम्बन्ध के दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। इसमें जमींदार की शीलरहित कन्या से गरीब परिवार की सुशिक्षित तथा सुशील कन्या को श्रेष्ठ बताते हुए उपन्यासकार तिलक-दहेज, विवाह में किये जाने वाले खर्च आदि की आलोचना करता है। सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति 'विमल जी' की जागरूकता का परिचय उनके अन्य उपन्यासों में भी मिलती है। 'विमल' के एक अन्य उपन्यास *'खरा सोना'* (१९२१) में किसानों पर जमींदारों के अत्याचार, कारखाने के मालिकों और मजदूरों के संघर्ष तथा मजदूरों की हडताल, अंग्रेजों के विरोध में आम जनता के असन्तोष आदि का चित्रण किया गया है। 'विमल जी' राष्ट्रीय भावनाओं और विचारों के अंकन का प्रयत्न तो किया है ,पर सरकार के डर से उन भावनाओं

और विचारों का खुलकर प्रतिपादन नहीं कर पाए, परन्तु जमींदारों द्वारा किया गया किसानों का दमन और मजदूरों की हडताल का चित्रण करने में वे नहीं हिचकते थे। मजदूरों और मीलमालिकों में सुलह कराकर उपन्यासकार अपनी जागरूकता का परिचय भी दिया है। 'विमल जी' के ही एक अन्य उपन्यास *'जीवन ज्योति'* (१९२२) में एक युवती अपने माता-पिता की असहमति के बावजूद किसी युवक से विवाह कर लेती है। अतः इसमें विद्रोही युवती का वर्णन किया गया है। *'लीलावती'* (१९२४) उपन्यास में वृद्धविवाह और दहेज-प्रथा के दुष्परिणामों के वर्णन के साथ-साथ स्त्री शिक्षा के महत्व का भी अंकन किया गया है। कहीं-कहीं देश की राजनीतिक स्थिरता पर भी प्रकाश डाला है। *'आशा पर पानी'* (१९२५) में 'विमल जी' ने *'लीलावती'* उपन्यास की तर्ज पर सामाजिक कुरीतियों का विरोध तथा आलोचना की है तथा पाश्चात्य अंग्रेजी शिक्षा के बुरे प्रभाव से ग्रसित नवयुवकों की दयनीय स्थिति का भी वर्णन किया गया है। एक अन्य उपन्यास *'केसर'* (१९२६) में भी अन्य उपन्यासों की ही तरह सामाजिक कुरीतियों का चित्रण किया गया है। इन सभी उपन्यासों के बाद 'विमल जी' का सबसे अन्तिम उपन्यास *'गरीब'* (१९४१) प्रकाशित हुआ, जिसमें जमींदारों द्वारा गरीब किसानों के शोषण, उनकी जमीन पर छल द्वारा हक जमाने का प्रयत्न, पुलिस विभाग में फैले भ्रष्टाचार तथा समकालीन पारिवारिक समस्याओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार अध्ययन से हमें पता चलता है, कि 'जगदीश झा विमल' के समस्त उपन्यास समकालीन यथार्थ से मेल खाते हैं। परन्तु विजन, उपयुक्त कथाशिल्प और सर्जनात्मक भाषा के अभाव में उनका साहित्यिक महत्व अधिक नहीं है। 'जगदीश झा विमल' के पश्चात् 'जी.पी. श्रीवास्तव' के उपन्यास प्रकाशित हुए। इन्होंने अपने समस्त उपन्यासों में सामाजिक और व्यक्तिगत असंगतियों को हास्य की पृष्ठभूमि बनाया है, परन्तु उनके हास्य में व्यवहारिक विनोद और खिलवाड की अधिकता है, जिससे इनके उपन्यास बहुत अधिक सफल नहीं हो सकें। इनके काल में ही 'मदारी लाल गुप्त' तथा 'बेचन शर्मा उग्र' ने उपन्यास साहित्य में कदम रखा। 'मदारी लाल गुप्त' के उपन्यासों *'गौरीशंकर' (१९२३), 'सखाराम' (१९२४), 'मानिक मन्दिर' (१९२६)* आदि में भी स्त्रियों के पातिव्रत्य, सच्चरित्रता, वृद्ध-विवाह के कूपरिणाम, गरीब परिवार की लडकियों के दुर्भाग्य, बालविवाह, निरक्षरता आदि का अंकन किया गया है। उपन्यासकार ने स्त्रियों के लिए स्वावलम्बन, शिक्षा, जागरूकता आदि की आवश्यकता बतायी है, जो उसकी सामाजिक जागरूकता का परिचायक है। इनके अलवा 'मदारीलाल गुप्त' के उपन्यासों में अपराध भरी घटनाओं, काम प्रसंगों के वर्णन की अधिकता है, जिससे साधारण मध्यवर्ग पाठकगणों को ज्यादा

रास नहीं आए। 'मदारी जी' के साथ ही 'बेचन शर्मा उग्र' प्रेमचन्द युग के ऐसे विशिष्ट उपन्यासकार हैं, जिन्होंने उस समय के समाज की कुरीतियों का साहस के साथ चित्रण किया है। इनके उपन्यासों में शराबियों, वेश्याओं, दलितों आदि से जुडी सच्चाई को अखबारी भाषा में प्रस्तुत किया। 'उग्र जी' के उपन्यासों में *'चन्द हसीनों के खतूत'* (१९२७) में हिन्दू और मुसलमान लडका-लडकी के प्रेम और शादी को साम्प्रदायिक सद्‌भाव के रूप में वर्णित किया गया है, यह उस समय के लिए एक साहसपूर्ण प्रयास था। इसमें उग्र जी ने इस विचार का मुख्य प्रतिपादन किया है, कि मनुष्य पहले मनुष्य है, बाद में वह भले ही हिन्दू-मुस्लिम या किसी अन्य जाति का सदस्य हो। *'बुधुआ की बेटी'* (१९२८) उपन्यास में भी अछूतोद्धार की समस्या को केन्द्र में रखकर चित्रण किया है। नीच जाति समझे जाने वाले हरिजनों के नारकीय जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण इससे पहले बहुत कम उपन्यासकारों ने किया होगा, जैसा की उग्र जी ने किया है। एक अन्य उपन्यास *'शराबी'* (१९३०) में कोठे और वेश्याओं का अंकन किया है। शराब के ही कारण, इस उपन्यास के दो परिवार विनाश को प्राप्त हो जाते है। अतः इसे भी राष्ट्र की एक प्रमुख समस्या के रूप में उकेरा गया है। प्रेमचन्द युग के इस विवेच्यकाल में ही 'जयशंकर प्रसाद' ने अपने उपन्यास *'कंकाल'* (१९३०) *'तितली'* (१९३४) तथा अपूर्ण उपन्यास *'इरावती'* (१९३६) लिख कर जो मान व प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह प्रेमचन्द को छोडकर इस समय में अन्य किसी उपन्यासकार को नहीं मिली। समकालीन आलोचकों ने उन्हें उपन्यास के क्षेत्र में एक स्कूल के संस्थाक के रूप में महत्व दिया। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास की परम्परा, जिसके संस्थापक प्रेमचन्द थे, उसे प्रेमचन्द स्कूल के नाम से जाना जाने लगा। इसी तरह यथार्थवादी या प्राकृतवादी उपन्यासों की परम्परा, जिसके जनक 'जयशंकर प्रसाद जी' माने गये है, उसे प्रसाद स्कूल के नाम में जाना जाने लगा। अतः उपन्यासों का यह स्कूल के नाम से विभाजन समकालीन साहित्यिक राजनीति का ही मुख्य परिणाम था। *'कंकाल'* उपन्यास में *'प्रसाद जी'* ने सामाजिक विकृतियों का चित्रण किया है। अवैध रूप से जन्मी सन्तानों के यथार्थ को भी उद्‌घाटित किया है। उन्होंने सभी तीर्थस्थानों में जैसे मथुरा, प्रयाग, काशी हरिद्वार, वृन्दावन जैसी जगहों में धर्म के नाम पर आडम्बरों तथा दुराचारों का अंकन किया है। एक स्त्री के प्रति पुरूष के परम्परावादी दृष्टिकोण पर भी 'प्रसाद जी' ने मार्मिक प्रहार किया है। *'कंकाल'* के साथ-साथ *'तितली'* में भी यथार्थ के स्थान पर आदर्श की स्थापना की गई है। तथा मजदूरों व दलित किसानों पर होने वाले अत्याचार तथा निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। 'जयशंकर प्रसाद' के महत्वपूर्ण समकालीन समस्यामूलक उपन्यासों के साथ ही छायावादी

काव्यधारा के प्रमुख कवि 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' ने भी अपने उपन्यास *'अप्सरा' (१९३१) 'अलका' (१९३३), 'निरूपमा' (१९३६)* और *'प्रभावती' (१९३६)* की रचना की। प्रथम उपन्यास *'अप्सरा'* में वेश्या समाज की समस्या का अंकन किया है। वेश्या समाज की समस्या बीसवीं शताब्दी के शुरूआत से ही हिन्दी उपन्यास का एक प्रमुख विषय रही है। इससे पहले भी 'प्रेमचन्द' ने अपने युग उपन्यास *'सेवासदन'* की रचना इस विषय को लेकर की है। संवेदनशील रचनाकारों में इस वेश्या समाज के प्रति बढती सहानुभूति, नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत मानी जा सकती है, जो आज के उपन्यास साहित्य का प्रमुख मुद्दा बना हुआ है। 'प्रेमचन्द' की इस समाज की स्त्रियों से सहानुभूति तो है, किन्तु उन्होंने किसी वेश्या का किसी सम्माननीय उच्च कुल के युवक से विवाह को दिखाने का साहस नहीं दिखाया परन्तु 'निराला' के उपन्यासों में यह साहस देखने को मिलता है। उन्होंने *'निरूपमा'* उपन्यास में एक वेश्या की बेटी कनक का विवाह साहित्य के प्रति पूर्ण समर्पित युवक राजकुमार से करने का अंकन किया है। 'निराला जी' एक ज्वलन्त सामाजिक समस्या के प्रति सहानुभूति पूर्ण भावना जाहिर करते हैं। *'अलका'* में भी *'निरूपमा'* की तरह 'निराला जी' ने मिली–जुली समस्याओं का अंकन किया है तथा अपने समय के आर्थिक और वैचारिक दृष्टि से पिछडें, रूढिगत संस्कारों में जकडे ग्रामीण समाज का चित्रण किया है। *'निरूपमा'* के साथ ही 'निराला' ने *'प्रभावती'* शीर्षक से एक ऐतिहासिक रोमांस की रचना की। इसकी कहानी जयचन्द के सामन्तों, वीरता, युद्ध, प्रेम से जुडी हुई है। यह उपन्यास साधारण जनता के दुख और दर्द, सामन्तों की विलासिता, राजनीतिक षड्यन्त्र, पुश्तैनी दुश्मनी के तहत किये जाने वाले प्रतिशोध को दिखाता है। 'निराला' का यथार्थवादी इतिहास बोध 'प्रभावती' को उपन्यास की विशेषता प्रदान करता है। इसी युग के गौण उपन्यासकारों में 'भवानीदयाल', 'मन्नू द्विवेदी गजपुरी', 'कृष्णालाल वर्मा', 'रमाशंकर सक्सेना', 'राहुल सांस्कृत्यायन', 'श्री कृष्णा मिश्र' आदि उल्लेखनीय है। इस काल के गौण उपन्यासकार प्रमुख उपन्यासकारों की तुलना में स्वाधीनता आन्दोलन के चित्रण में अधिक स्पष्टवादी वर्णन करते हैं। अत: द्वितीय कोटि के उपन्यासकारों की केन्द्रीय सोच समकालीन सामाजिक बुराइयों को अंकित करना था, जिसमें स्त्री, मजदूर, दलित वर्ग, आर्थिक वर्ग की समयाएँ प्रमुख थी।

तीसरी कोटि में हम उन उपन्यासकारों को रख सकते हैं, जिनकी उपन्यासकार के रूप में पहचान तो इस युग में ही बन गयी थी, पर बाद में अधिक चर्चित हुए। इनमें 'चतुरसेन शास्त्री' ही एक मात्र ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने अपना प्रथम उपन्यास *'हृदय की परख'* १९१७ ई. में

प्रकाशित किया अर्थात् विवेच्यकाल के एक साल पहले ही उनका यह उपन्यास आया तथा इसके पश्चात् के सभी उपन्यास इस काल में ही प्रकाशित किए गए। 'चतुरसेन' के सभी उपन्यास *'हृदय की प्यास'(१९२७), 'अमर अभिलाषा' (१९२३)* और *'आत्मदाह'* (१९३४) में प्रकाशित हुए। इनके पश्चात् सन् १९५० ई. में भी इनका एक उपन्यास *'नील माटी'* प्रकाशित हुआ। इन उपन्यासों में पाश्चात्य प्रभाव के चलते एक शादीशुदा पुरूष का किसी अन्य स्त्री के साथ अनैतिक सम्बन्धों का अंकन किया है। इसी पाश्चात्य प्रभाव के प्रभाववश पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन में आने वाले बदलाव आदि का चित्रण भी इस उपन्यास में हुआ है। उपन्यासकार का दृष्टिकोण परम्परावादी जान पडता है। यद्यपि अत्यन्त भयानक स्थिति में विधवा-विवाह का समर्थन भी उन्होंने किया है। *'आत्मदाह'* उपन्यास देश-प्रेम से ओतप्रोत होकर लिखा गया है, इसमें आजादी के लिये चल रहे आन्दोलन एवं मर-मिटने का वर्णन किया है। 'चतुरसेन शास्त्री' के अन्तिम उपन्यास *'अमर अभिलाषा'* में एक प्रमुख नवीनता यह है, कि इसमें उपन्यासकार ने नारायणी सहित छह विधवाओं की कहानी लिखकर विधवाओं पर होने वाले अत्याचारों का वर्णन किया गया है। ये सभी कहानियाँ आपस में आजाद सी जान पडती है, केवल विषय के द्वारा ही एक-दूसरे से जुडी हुई है। प्रेमचन्द युग के तीसरी कोटि के उपन्यासकारों में पहचान बनाने वाले और बाद में भी हिन्दी उपन्यास को समृद्ध करने वाले लेखकों में 'गोविन्द वल्लभ पन्त', 'भगवती प्रसाद वाजपेयी', 'इलाचन्द्र जोशी', 'जैनेन्द्र कुमार', 'प्रतापनारायण श्रीवास्तव', 'अनूपलाल मंडल' और 'वृन्दावनलाल वर्मा' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें 'गोविन्द वल्लभ पन्त' ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिकता का अंकन बहुतायत रूप से किया है। पन्त जी छठें दशक तक उपन्यास लिखते रहें, किन्तु उपन्यासकार के रूप से उनकी अधिक पहचान नहीं बन सकीं। 'पन्त जी' के पश्चात् 'अनूपलाल मंडल जी' ने अपने उपन्यासों की केन्द्रीय सोच सामाजिक कुरीतियों में मुख्य रूप से वैवाहिक समस्याओं की सुधारवादी दृष्टिकोण को रखा है। इसी काल में 'अनूपलाल मंडल' के ही समकालीन उपन्यासकार 'भगवती चरण वर्मा जी' का आगमन हुआ। इनके उपन्यास *'चित्रलेखा'* (१९३४) और *'तीन वर्ष'* (१९३६) में वैचारिक या दार्शनिक समस्या को दिखाया गया है। यह वैचारिक समस्या यह है, कि पाप क्या है और उसकी स्थिति कहाँ है। इसी समस्या के समाधान हेतू इस उपन्यास के पात्र विचरण करते रहते हैं। इनके उपन्यासों में भी काम भावना, मध्यवर्गीय मन की भावनाओं, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा संस्कारगत स्थितियों का चित्रण किया गया है। इसी समय 'जैनेन्द्र कुमार' ने स्त्री-पुरूष के प्रेम और वैवाहिक समस्या को अधिक वैचारिक गहनता

और संवेदनशीलता के साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर वर्णित किया है। उन्होंने व्यक्ति के आन्तरिक जीवन मन में उत्पन्न हो रहे द्वन्द, मूल्यों को लेकर हो रहे संघर्ष को समाज के यथार्थ से अधिक महव दिया है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास को मनोवैज्ञानिक दिशा की तरफ अग्रसर करने में 'जैनेन्द्र जी' की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है। उनके प्रथम उपन्यास *'परख'* में प्रेम की संवेदना से जुडें मानसिक तूफान का अंकन बडे ही प्रभावशाली रूप में किया गया है। *'सुनीता'* उपन्यास में 'जैनेन्द्र' पत्नी को ही अपने वैवाहिकी के घेरे से बाहर निकालकर प्रेम की स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। पात्रों की संवेदना और मानसिक तनाव के चित्रण में 'जैनेन्द्र' ने गहरी सर्जनशीलता का परिचय दिया है।

प्रेमचन्द के लेखन काल के उत्तरार्ध में जिन औपन्यासिक प्रवृत्तियों की नींव पडी, उनका सम्पूर्ण विकास प्रेमचन्द के बाद (१९३७-४७) होता दिखाई देता है। 'जैनेन्द्र कुमार' *'सुनीता'* उपन्यास की रचना के साथ ही उपन्यासकार के रूप प्रतिष्ठित हो चुके थे। इसके पश्चात् उनका अन्य उपन्यास *'त्यागपत्र'* (१९३७) और उसके दो वर्ष बाद १९३९ ई. में *'कल्याणी'* नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। पुरूष की सत्ता प्रधान समाज में स्त्री का अनेक प्रकार से शोषण हिन्दी उपन्यासकारों की चिन्ता का विषय शुरूआत से ही रहा है। 'जैनेन्द्र जी' ने इस स्त्री के शोषण सम्बन्धी चिन्ता को *'त्यागपत्र'* और *'कल्याणी'* में नये आयाम में प्रस्तुत किया है। इन दोनों ही उपन्यासों में 'जैनेन्द्र जी' ने परम्परागत अवधारणा के खोखलेपन को उजागर किया है। *'त्यागपत्र'* मनुवादी हिन्दू व्यवस्था में बौखलाहट उत्पन्न करने वाला उपन्यास जान पडता है।

'जैनेन्द्र' के समकालीन 'भगवती प्रसाद वाजपेयी' ने भी इस समय में *'पिपासा' (१९३७), 'दो बहने' (१९४०),* और *'निमन्त्रण'* (१९४२) आदि उपन्यास प्रकाशित हुए। परम्परागत नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करने वाला प्रेम इन उपन्यासों का केन्द्रीय विषय है। प्रेम के मनोभाव और नैतिक मूल्यों का संघर्ष 'वाजपेयी जी' के सभी उपन्यासों में मिलता है। *'पिपासा'* उपन्यास में प्रेम और परम्परागत नैतिक संहिता का प्रखर द्वन्द प्रस्तुत किया गया है और उपन्यासकार विवाहिता स्त्री को भी पति के प्रेम का अधिकार देने के समर्थक जान पडते हैं। *'निमन्त्रण'* उपन्यास में विवाह के औचित्य पर ही सवालिया निशान लगाया गया है। काम-विषयक आजादी के लिए आधुनिक स्त्री की क्रान्तिकारी की हल्की सी अनुगूँज 'वाजपेयी जी' के उपन्यासों में सुनी जा सकती है।

इसी काल में १९३७ ई. में 'राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह' का *'राम रहीम'* नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् उनके अन्य उपन्यासों में *'सावनी समाँ' (१९३८), 'पुरूष और नारी' (१९३९), 'टूटा तारा' (१९४१)* तथा *'सूरदास'* (१९४३) उल्लेखनीय है। *'राम रहीम'* राजा साहब का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका उद्देश्य धर्म और समाज के तमाम चिट्ठे तथा भारतीय जीवन के अत्याचार, विचार और पुकार को यथार्थवादी तरीके से उजागर करना था। *'राम रहीम'* उपन्यास के कथ्य का दूसरा पक्ष है, नारी की समस्या। हिन्दी साहित्य में यह समस्या कोई नवीन समस्या नहीं है। 'गौरीदत्त' से लेकर 'जैनेन्द्र' तक अधिकतर उपन्यासकारों ने इस समस्या का किसी न किसी रूप में चित्रण किया है। 'राजा साहब' के अनुसार स्त्री चाहे जिस भी वर्ग की हो, वह शोषण से मुक्त नहीं हो सकती है। 'राजा साहब' के उपन्यासों में पात्रों के संवादों के माध्यम से स्त्री अधिकार, विवाह, दाम्पत्यजीवन, पर्दा –प्रथा आदि पर अपने विचार व्यक्त किए गए हैं। इन संवादों से स्पष्ट है, कि स्त्री के अधिकार, आजादी, समाज में उनकी जगह आदि के सम्बन्ध में 'राजा साहब' का दृष्टिकोण आधुनिक दृष्टि और संवेदना से सम्पन्न था, वह स्त्री शिक्षा, नारी स्वतन्त्रता, स्त्री अधिकार जैसे सवालों को लेकर उपन्यासों की रचना करते हैं ।

'यशपाल' एक ऐसे उपन्यासकार है, जो *'दादा कामरेड'* के पश्चात् काफी चर्चित हो गये थे, इसके पश्चात् *'देशद्रोही' (१९४३), 'दिव्या' (१९४५)* और *'पार्टी कामरेड'* (१९४६) नामक उपन्यासों की रचना हुई। 'यशपाल' स्वयं एक क्रान्तिकारी दल के सक्रिय सदस्य थे और *'दादा कामरेड'* उपन्यास में क्रान्तिकारियों के कुछ विश्वसनीय अंकन मिलते है। *'दादा कामरेड'* उपन्यास के क्रान्तिकारी पात्र अत्यन्त सक्रिय और सजीव जान पडते हैं, जब भी हम उसे पढने लगते हैं, एक रहस्य और रोमांच की अनुभूति से गुजरने का अहसास होता है। अत: *'दादा कामरेड'* उपन्यास में उन्होंने भारत में अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध सशस्त्र विद्रोह करने वाले गुप्त क्रान्तिकारी दल की तत्कालीन वैचारिक अन्तर्विरोध को प्रस्तुत किया गया है। 'यशपाल' के ही एक अन्य उपन्यास *'दिव्या'* के कथानक का विषय ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीं में व्याप्त ब्राह्मण–बौद्ध संघर्ष है। इस उपन्यास को 'यशपाल जी' ने ही ऐतिहासिक कल्पना की संज्ञा दी है। 'यशपाल जी' ने यह महसूस किया कि पुरूष सत्ता प्रधान समाज में स्त्री शोषण और उस पर होने वाला अत्याचार हजारों शताब्दियों से चला आ रहा है, इसी का चित्रण इस उपन्यास में किया है।

सन् १९४७ ई. में स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् 'चतुरसेन शास्त्री' ने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया । सन् १९४९ ई. में 'शास्त्री जी' का *'वैशाली की नगरवधू'* उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में बौद्ध साहित्य के सुप्रसिद्ध पात्र अम्रपाली के चरित्र को ध्यान में रखकर उस समय की ब्राह्मण, बौद्ध और जैन संस्कृतियों के टकराव का अंकन किया है। इस युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के चित्रण में 'शास्त्री जी' ने विशेष रूचि दर्शायी है। 'शास्त्री जी' गणतन्त्र की बजाय राजतन्त्र को उत्तम मानते थे तथा गणतन्त्र और राजतन्त्र दोनों ही व्यवस्थाओं में फैल रहे सामाजिक विरोधों और स्त्री की दयनीय स्थिति का अंकन करते थे। इसी समय 'वृन्दावनलाल वर्मा' का *'मृगनयनी'* (१९५०) उपन्यास प्रकाश में आया, इसमें इन्होंने वैज्ञानिक-इतिहास-बोध के साथ बुन्देलखंड अँचल के गौरव की कहानी को में प्रस्तुत किया है। इन्होंने बुन्देलखण्ड के लोक जीवन, प्राकृतिक सौन्दर्य और सामन्ती चरित्र का रंग भर कर उसे ओर आकर्षक बना दिया है।

अतः अन्त में हम यह कह सकते हैं, कि कथानक, शिल्प एवं भाषा सभी दृष्टियों से 'प्रेमचन्द' ने हिन्दी उपन्यास को प्रौढता प्रदान की है। इसी प्रौढता में प्रमुख योगदान 'जैनेन्द्र', 'अज्ञेय', 'इलाचन्द्र जोशी', 'राहुल सांकृत्यायन', 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' और 'यशपाल' को माना जा सकता है। इस काल में समकालीन राष्ट्रीय चेतना, ऐतिहासिकता, स्त्री समस्या, राजनीति आदि को प्रमुख महत्व दिया गया है।

१.३ सन् १९५१ ई. से १९८० ई. तक के उपन्यास

सन् १९५१ ई. से पहले हमारे देश को आजादी मिल चुकी थी। अंग्रेजी सरकार यहाँ से जा चुकी थी, किन्तु देश में गरीबी, महामारी आदि जोरों पर थी। इसी समय प्रजातन्त्र का जन्म हुआ और उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्वतन्त्रता की खुशी के साथ-साथ इस जर्जर हालत की दयनीय स्थिति का भी चित्रण किया। इस समय 'चतुरसेन शास्त्री', 'वृन्दावनलाल वर्मा', 'भगवती प्रसाद वाजपेयी', 'जैनेन्द्र', 'इलाचन्द्र जोशी', 'भगवतीचरण वर्मा', 'यशपाल' आदि उपन्यासकार आए। ये सभी लेखक इससे पहले भी कई उपन्यास लिख चुके थे ।

'चतुरसेन शास्त्री' ने *'रक्त की प्यास' (१९५१), 'आलमगीर वयं रक्षाम' (१९५५), 'सोमनाथ' (१९५५), 'गोली' (१९५६)और 'सोना और खून' (१९६०)* आदि ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यास लिखे, जो काफी में लोकप्रिय भी हुए। इन सभी उपन्यासों में 'शास्त्री जी' का प्राचीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन प्रभावी रूप में प्रकट हुआ है। इन सभी उपन्यासों में *'सोमनाथ'* उपन्यास अपने मार्मिक प्रसंगों और जीवन्त पात्रों की वजह से अधिक शक्तिशाली उपन्यास बन गया। *'सोमनाथ'* में 'शास्त्री जी' शिवोपासना के विकास और राजपूत राजाओं की मानसिकता का विद्वतापूर्ण चित्रण किया हैं।

'चतुरसेन शास्त्री' के पश्चात् 'वृन्दावन लाल वर्मा' ने एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में हिन्दी साहित्य में अपनी पहचान बनाई है। उनके उपन्यासों में *'माधव जी सिन्धियाँ' (१९५७), 'भुवन विक्रम' (१९५७), 'महारानी दुर्गावती' (१९६४), 'सोती आग' (१९६७)* आदि प्रमुख है। 'वर्मा जी' के समस्त उपन्यासों में औपन्यासिक कला अपने पूरे निखार पर है। इन सभी में बुन्देलखण्ड अँचल के गौरव की कहानी पूर्ण मार्मिकता के साथ अंकित की गई है। बुन्देलखण्ड की प्राकृतिक सुन्दरता, सामाजिक परिवेश, चारित्रिक वैभव और लोक संस्कृति को उपन्यासकार ने बहुत ही प्रमाणिकता एवं संवेदशीलता के साथ अपने उपन्यासों में अंकित किया है। 'वर्मा जी' ने इन सभी में ऐतिहासिक किवदन्तियों का अनन्य मिलाप करके अपने कथासंसार की रचना की है और उसमें बुन्देलखण्ड के लोक-जीवन का रंग भरके उसे ओर अधिक मनमोहक बना दिया है।

'वृन्दावन लाल वर्मा' के ही समय में 'जैनेन्द्र जी' ने *'सुखदा' (१९५२), 'विवर्त'*

(१९५२), 'व्यतीत' (१९५३), 'जयवर्द्धन' (१९५६), 'मुक्ति बोध' (१९६५), 'अनन्तर' (१९६८), 'अनाम स्वामी' (१९७४) आदि उपन्यासों की रचना की। 'जैनेन्द्र' पहले ही अपने कुछ प्रसिद्ध उपन्यासों की रचना करके हिन्दी उपन्यास को एक नया मोड दे चुके थे। 'जैनेन्द्र जी' ने अपने पहले दौर में ही मनोवैज्ञानिक और व्यक्तिवादी उपन्यासकार के रूप में काफी प्रतिष्ठा आर्जित कर ली थी। विषय, भाषा और शिल्प की नवीनता तथा सार्थकता ने 'जैनेन्द्र जी' को हिन्दी साहित्य में ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया था, जो अन्य के लिए बहुत बडी बात थी। पर अपने दूसरे चरण (१९५०-१९७४) में 'जैनेन्द्र जी' ने ख्याति तो पाई, किन्तु अधिक आगे नहीं बढ पाये। इन समस्त उपन्यासों में वैचारिक उठा-पठक की अधिकता है। सभी में प्रेम के विभिन्न रूपों का चित्रण अधिक मिलता है। प्रेम का एक त्रिकोण *'सुनीता'* से लेकर *'अनाम स्वामी'* तक समान रूप से देखा जा सकता है। इस त्रिकोण प्रेम में एक काफी अधिक उदार और बुद्धिजीवी पति प्रेम की नजर से काफी असन्तुष्ट एवं आन्तरिक स्तर पर स्वतन्त्रता के लिए छटपटाती पत्नी और एक कुंठाग्रस्त जटिल स्वभाव वाला आक्रामक सा प्रेमी होता है। अत: प्रेम की त्रिकोणीय कहानी को प्रस्तुत करना ही, इन उपन्यासों का प्रमुख विषय जान पडता है ।

'इलाचन्द्र जोशी' भी इसी काल के प्रमुख उपन्यासकारों में आते हैं। ' जोशी जी' ने भी 'जैनेन्द्र जी' की ही तर्ज पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की ही रचना अधिक की है। 'जैनेन्द्र जी' ने उपन्यास में सामाजिक प्रश्नों के साथ में मनोंवैज्ञानिक स्थितियों को अधिक महत्व देने की पहल की, पर 'जोशी जी' ने शुद्ध मनोवैज्ञानिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर उपन्यास लिखने की पहली कोशिश की है। इनमें इस समय के उपन्यासों में *'सुबह के भूले' (१९५२), 'जहाज के पंछी' (१९५५), 'ऋतुचक्र' (१९६९), 'भूत का भविष्य' (१९७३), 'कवि की प्रेयसी' (१९७६)* प्रमुख है।'जोशी जी' के सभी स्वतन्त्रतापूर्व उपन्यासों में मानसिक विकारों, मनोग्रन्थियों, कुंठाओं, और मनोरोगों के शिकार पात्रों का चित्रण किया है, किन्तु इन उपन्यासों में पात्रों के चरित्र और मनोविश्लेषण शास्त्रों के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। 'जोशी जी' के उपन्यास के पात्र न केवल समाज निरपेक्ष हैं वरन् समाज विरोधी भी है। इसकें अलावा कहीं-कहीं पर उन्हें किसी आदर्श से प्रेरित भी दिखाया गया है ।

'इलाचन्द्र जोशी' के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की सफलता के साथ-साथ इस समय में अन्य उपन्यासकारों जिसमें 'भगवती चरण वर्मा', 'राहुल सांस्कृत्यायन', 'यशपाल', 'अज्ञेय', 'उपेन्द्रनाथ अश्क', 'रांगेय राघव', 'भैरवप्रसाद गुप्त' आदि को भी काफी प्रसिद्धी प्राप्त हुई।

'भगवतीचरण वर्मा' के उपन्यासों की केन्द्रीय सोच 'जोशी जी' व 'जैनेन्द्र जी' की मनोवैज्ञानिक सोच से अलग हटकर जान पडती है। उनके उपन्यास *'अपने खिलौने' (१९५७), 'भूले बिसरे चित्र' (१९५९), 'वह फिर नहीं आई' (१९६०), 'सामर्थ्य और सीमा' (१९६२), 'थके पाँव' (१९६३), 'रेखा' (१९६४), 'सबहिं नचावत राम गोसाई' (१९७०), 'प्रश्न और मरीचिका' (१९७३)* आदि है ।

उपन्यासों के कथानक की दृष्टि से 'वर्मा जी' के उपन्यासों में नवीनता दिखाई देती है। इन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक (१८९०) से लेकर भारत पर चीन के आक्रमण (१९६२) तक के समय को अपने उपन्यासों में व्यापक और विविधतापूर्ण रूप में पेश करने का प्रयत्न किया हैं। इनके समस्त उपन्यासों में इस समय में भारत देश में होने वाले आर्थिक-राजनीतिक और सामाजिक उठापठक का चित्रण किया गया है। *'सबहिं नचावत राम गोसाई'* और *'सामर्थ्य और सीमा'* का कथानक भी आजाद भारत के इतिहास से ही जुडा हुआ है। इसके साथ ही इनके उपन्यासों में सामाजिक-राजनीतिक कसौटी पर पात्रों के मनोभावों को उकेरा गया है। इन सभी उपन्यासों के केन्द्र में उनका भाग्यवादी दृष्टिकोण भी निहित है। जिसके अनुसार मानव अपनी स्थितियों का दास है, वह उनका मालिक नहीं है। *'भूले बिसरे चित्र'* 'भगवती जी' का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास में तीन पीढियों की मानसिक सोच और बदलाव, पुरानी पीढी के साथ नयी पीढी के संघर्ष, औपनिवेशिक शासन के प्रति बुद्धिजीवी वर्ग के मोहभंग और विद्रोह का अंकन किया गया है। 'भगवती चरण वर्मा' के उपन्यासों में समकालीन राजनीति, राष्ट्रीय आन्दोलन, साम्यवाद, गाँधीवाद आदि पर पात्रों के बीच विवाद काफी दिखाई पड रहा है। स्वतन्त्रता मिलने के बाद देश में प्रजातन्त्र की स्थापना तो अवश्य हुई, परन्तु सामन्तवाद और पूँजीवाद की शक्तियाँ कमजोर होने के बजाए दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली होती गयी। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय भी काँग्रेस पर इन शक्तियों का प्रभाव काफी मात्रा में था, पर गाँधी जी, नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, सुभाषचन्द्र बोस आदि महान नेताओं की बोद्धिक और चारित्रिक दबाव के कारण इन शक्तियों का प्रभाव दबा हुआ था। पर आजादी प्राप्त होने के बाद ये सभी सामन्तवादी, पूँजीवादी शक्तियाँ भारतीय प्रजातन्त्र पर प्रभावी हो गयी। इस दशक में चुनाव जीतने के लिए काँग्रेसी नेता पूँजीपतियों के द्वारा बिकने लगे थे और उन्हें विभिन्न प्रकार की आर्थिक छूट देने लगे थे। अपराध करने वाले लोगों का राजनीति में आगमन इसी दशक से शुरू हो गया था और नेताओं में सामान्य रूप से सेवा के भाव के स्थान पर सत्ता के आगमन का

'वर्मा जी' ने अपने उपन्यासों में वर्णन किया है। अत: अन्त में हम कह सकते हैं, कि 'वर्मा जी' ने अपने सभी उपन्यासों में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और नैतिक राजनीतिक उठा-पठक का चित्रण बडी ही प्रमुखता के साथ किया है ।

'वर्मा जी' साथ ही 'राहुल सांस्कृत्यायन' ने स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले ही अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय दे दिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के उनके *'विस्मृत यात्री'* (१९५४), *'दिवोदास'* (१९६१) आदि ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए। 'राहुल जी' पूर्णत: साम्यवादी थे। इनके समस्त उपन्यासों में शोषण और दमन से स्वतन्त्र, वैज्ञानिक विचारधारा से सम्पन्न, साम्यवादी समाज के निर्माण की अभिव्यक्ति हुई है। साम्यवादी समाज का निर्माण करना उनका एक बहुत बडा सपना था, उसी का वर्णन उनके उपन्यासों में मिलता है। साम्यवादी समाज के निर्माण के अलावा 'राहुल जी' का दूसरा महत्वपूर्ण आकर्षण पुराने भारत के गणराज्यों की व्यवस्था के प्रति था, जो राजतन्त्र विरोधी और आधुनिक विचारधारा के अनुरूप थी। 'राहुल जी' के उपन्यासों में *'सिंह सेनापति'* को सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों में माना जाता है। इसमें उन्होंने अपनी गणराज्य विषयक अवधारणा को बडे सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। *'विस्मृत यात्री'* (१९५४) उपन्यास में भी गणराज्य की स्थापना के प्रति 'राहुल जी' का आकर्षण व्यक्त हुआ है। इसके भीतर कहीं न कहीं देश को स्वतन्त्र देखने की लालसा भी शामिल है। बौद्ध धर्म के प्रति 'राहुल जी' का आकर्षण भी उसकी समतावादी विचारधारा के कारण ही है। अपनी मानसिक प्रकृति में बौद्ध धर्म उन्हें मार्क्सवाद के अत्यन्त पास प्रतीत होता है। *'विस्मृत यात्री'* में इस विचारधारा को भी अभिव्यक्ति मिली है। *'दिवोदास'* (१९६१) संरचना की दृष्टि से अत्यन्त सुगठित उपन्यास है, आरम्भिक आर्यों के कर्मठ जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है। अगर देखा जाये तो 'राहुल जी' ऐसे ही जीवन के समर्थक तथा मानने वाले थे, इसकी पुष्टि उन्होंने *'दिवोदास'* उपन्यास के स्त्री-पुरूष पात्रों की चरित्र-रचना द्वारा की है। 'राहुल जी' ने ऐतिहासिक-सांस्कृति उपन्यासों में वर्तमान जीवन को बडी ही संवेदनशीलता के साथ वर्णन किया है। अत: 'राहुल जी' ने अपने उपन्यासों में साम्यवादी समाज की विचारधारा का अंकन बडे ही प्रभावशाली ढंग से किया है।

इसी समय स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 'यशपाल जी' ने हिन्दी साहित्य में अपने श्रेष्ठतम उपन्यासों से अपनी दृढ स्थिति बना ली थी। आजादी के पश्चात् उनके *'अमिता', 'झूठा सच', 'बारह घंटे', 'अप्सरा का श्राप', 'क्यों फंसे?', 'तेरी मेरी उसकी बात'* आदि उपन्यास प्रकाशित

हुए । वैसे तो 'यशपाल जी' ने आजादी के पूर्व ही पहचाने जाने लगे थे, किन्तु स्वतन्त्रता के बाद उन्होंने अधिक सफलता प्राप्त की। 'यशपाल जी' के इन सभी उपन्यासों में दो उपन्यास *'झूठा सच' (१९६०)* तथा *'मेरी तेरी उसकी बात'* (१९७४) अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। अपने इन उपन्यासों में 'यशपाल जी' ने 'भगवती चरण वर्मा' की ही तरह आधुनिक भारतीयों के एक बडे फलक को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। *'झूठा सच'* और *'मेरी तेरी उसकी बात'* दोनों ही उपन्यासों में स्वतन्त्रता आन्दोलन के गाँधीवादी युग को कथानक के रूप में प्रस्तुत किया है। *'झूठा सच'* में जिस समय का अंकन किया गया है, वह भारत के इतिहास का एक बहुत उत्तेजनापूर्ण काल है। स्वतन्त्रता की बहुत बडी कीमत भारतीयों को चुकानी पडी, जिसके फलस्वरूप देश का विभाजन हो गया। विभाजन के साथ-साथ उत्तर भारत में साम्प्रदायिकता की ऐसी ज्वाला भडक उठी ,जिसने विनाश के अलावा कुछ नहीं किया। साम्प्रदायिक दंगों में हजारों लोग मौत के घाट उतार डाले गए, लाखों लोग बेघर हो गए, यह एक अनहोनी और अमानवीय त्रासदी थी। बँटवारे का भयानक वर्णन, मुस्लिम लोग और सिख नेताओं के भडकाऊ भाषणों, मुस्लिम समाज के आक्रामक तेवरों आदि का अंकन इनके उपन्यासों में किया गया है। *'मेरी तेरी उसकी बात'* उपन्यास के पश्चात् उनके प्रथम उपन्यास *'झूठा सच'* का द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। इस दूसरे खंड में देश के विकास और निर्माण में बुद्धिजीवियों और नेताओं की प्रगतिशील भूमिका का प्रभावपूर्ण चित्रण किया गया है। प्रगतिशील शक्तियाँ अपने निजी स्वार्थ और भोग-लालसा के लिए जनता के प्रति विश्वासघात की राह चुनती है। *'झूठा सच'* उपन्यास के पात्र जयदेव पूरी प्रतिगामी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।सूद उस भ्रष्ट राजनीति-व्यवसायी का प्रतिनिधि है, जो अपनी समस्त बेशर्मीपन के साथ सत्ता पर विराजमान है। सूद जैसे राजनेता आज के भारत की नंगी सच्चाई हैं, जो अपने स्वयं के स्वार्थ के लिए अपने ही देश के विकास को रोकने तथा देश के हितों को अनेक देशों की कम्पनियों के हाथों बेचने का काम करते हैं। वे सदैव पूँजीपतियों और व्यवसायियों के हितों की रक्षा में आम जनता के साथ विश्वासघात करने तथा आर्थिक योजनाओं के रास्ते में रोडा अटकाने के लिए किसी भी अनैतिकता की राह पर चलने में नहीं हिचकते। सूद, जयदेव और सोमराज जैसे शुद्ध राजनीति-व्यवसायियों, भ्रष्ट पत्रकारों और जनता की धन-सम्पति लूटने वाले लोगों के चित्रण में 'यशपाल जी' ने गहरी संवेदनशीलता का परिचय दिया है। 'यशपाल जी' केवल भ्रष्टाचार, बुराई और झूठ का पर्दाफाश ही नहीं करते थे, वरन् एक बेहतर जीवन का सपना भी देखते हैं।

'यशपाल जी' के बेहतर जीवन के सपने के साथ-साथ 'अज्ञेय' के दर्द में भी हमें अपने जीवन की आस्था का साथ नहीं छोडना चाहिये, क्योंकि दर्द सहन करके ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास होगा के सिद्धान्त में आस्था रखते हैं। इनके उपन्यास *'नदी के द्वीप'* (१९५१) और *'अपने-अपने अजनबी'* (१९६१) इस समय में ही प्रकाशित हुए हैं। *'नदी के द्वीप'* उपन्यास में मुख्य रूप से एक प्रेम की कहानी है, जो त्रिकोणीय प्रेमकथा है। इसके साथ एक पात्र प्रमुख है, जो खलनायक के जैसा है। इसके तीन पात्र रेखा, भुवन और गौरा आदि अच्छे पात्र तथा चन्द्रमाधव बुरे पात्रों में परिलक्षित होता है। 'अज्ञेय' ने *'नदी के द्वीप'* उपन्यास में प्रेम का जो दर्शन कराना चाहा है, वह रेखा की संवेदना द्वारा ही व्यक्त होता है। भुवन का चरित्र भी इसमें भरपूर सहयोग देता है। भुवन एक संवेदनशील, अपनी अनुभूतियों के प्रति ईमानदार व्यक्ति है। उसकी नजर में प्रेम वासना नहीं है, बल्कि मन की आवाज है। गौरा को लिखे गए भुवन के खतों से उसकी जो मन की स्थिति सामने आती है, वह तपस्या की स्थिति है, जिसके बिना प्यार अधूरा सा रहता है। अत: *'नदी के द्वीप'* उपन्यास में सामाजिकता की बजाय प्रेम के रूप को दिखाया गया है। इस प्रेम की प्रस्तुति कुछ पात्रों के माध्यम से हुई है, जो बौद्धिक नजर से अपने वर्ग से ऊपर उठे हुए हैं। ये सभी पात्र अपने परिवेश तथा आन्तरिक संघटन के कलात्मक नियमों की कसौटी पर खरे उतरे हैं। *'अपने अपने अजनबी'* उपन्यास इनके अन्य उपन्यासों से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। उपन्यासकार ने इसमें जीवन, मृत्यु, वरण की आजादी और आस्था सम्बन्धी सवालों पर योके और सेल्मा नामक पात्रों के माध्यम से वर्णन किया है, ये दोनों ही महिलाएँ है तथा दोनों ही एक-दूसरे से हमेशा अपरिचित, अलग स्वभाव, अलग उम्र और अलग-अलग विचारों के रहते हुए, आश्चर्यजनक रूप से बर्फ से दबे एक घर में तीन-चार महीनों के लिए कैद और बिना चाहे एक-दूसरे के साथ रहने को विवश हो जाती है। इससे यह समझ में आता है, कि मानव काफी हद तक प्रकृति का, परिस्थितियों का दास है और उसकी विवशता तथा उससे पैदा हुई घुटन, निराशा आदि उसकी नियति है। विवशता मन की एक ऐसी स्थिति है, जो हमारे आधुनिक जीवन की एक सच्चाई है और इस सच्चाई को 'अज्ञेय जी' ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। इस समस्त उपन्यास की कहानी का निष्कर्ष यह निकलता है, कि हम चुनने के लिए, वरण के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं। यह बात आधुनिक जीवन में कदम-कदम पर रोजमर्रा जीवन में देखी जा सकती है। अस्तित्ववादी मनुष्य की इस मजबूरी से उत्पन्न मन:स्थिति को 'अज्ञेय जी' ने विभिन्न रूपों से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का दूसरा विषय मौत से साक्षात्कार करने की अवधारणा है। यह विषय दार्शनीक विषय है। मनुष्य और समाज

के जीवन में कई ऐसे अवसर आते हैं, जब मौत के साक्षात्कार का सवाल महत्वपूर्ण हो उठता है, पर सामान्यत: आदमी मृत्यु के बारे में कम सोचता है। मृत्यु जिन्दगी की सच्चाई होते हुये भी अनुभव संसार का सच नहीं है। सेल्मा और योके की मानसिक अवस्थाओं का प्रमुख अन्तर यह है, कि सेल्मा इस सच्चाई को अनुभव स्तर पर समझ चुकी है, कि कुछ भी हमारे वश में नहीं होता है, बस एक ही बात हमारे वश में होती है, इसी बात को पहचानना जरूरी है। योके इसे स्वीकार नहीं करती। मृत्यु से आमना–सामना होने की स्थिति में उसके लिए व्यक्तियों के अलग–अलग नजरिए होते हैं। एक सहज भाव से उसका स्वागत करता है और दूसरा उसकी कल्पना मात्र से पागल हो जाता है। अस्तित्ववादी विचारधारा ने आज के जीवन में अजनबीपन के बोध को रेखांकित किया है। अत: अपने उपन्यास में 'अज्ञेय जी' ने इसी विचारधारा को प्रमुखता प्रदान की है। यही उनके इस उपन्यास की केन्द्रीय सोच है।

'उपेन्द्रनाथ अश्क जी' ने इसी समय 'अज्ञेय जी' के अस्तित्ववादी विचारधारा से अलग हटकर वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक से लेकर पाँचवें दशक के समय में शहरी या नगरी मध्य वर्ग के जीवन का अंकन किया है। इनके उपन्यासों में *'एक रात का नरक' (१९६८), 'एक नन्ही चील' (१९६९), 'बाँधों न नाव इस ढाँव' (१९७४), 'निमिषा' (१९८०)* आदि प्रमुख है। 'अश्क जी' के उपन्यासों में निम्न तथा मध्यवर्ग के आर्थिक संघर्ष और इस वर्ग के युवकों की आकांक्षाओं, सपनों और नैतिक मूल्यों से उत्पन्न हुई कुठांओं का वर्णन बडी ही मार्मिकता के साथ किया है। पुरानी पीढी का संघर्ष, भटकाव, निराशा, प्रेम के क्षेत्र में असफलता, वैवाहिक जीवन में कडवाहट तथा समाज द्वारा बनाये गए मूल्यों की लक्ष्मणरेखा के भीतर घुटती, तडपती स्त्रियों का चित्रण करना ही 'अश्क जी' के उपन्यासों की विशेषता है। इनके उपन्यासों के केन्द्रीय पात्र अपने चारों तरफ की विषम परिस्थितियों, पारिवारिक समस्याओं शोषण की शक्तियों तथा अपनी महत्वाकांक्षाओं, सपनों और मानसिक कुंठाओं से लडते हुए कश्मकश का जीवन व्यतीत करते हैं।

इसी समय में 'अमृतलाल नागर जी' को उल्लेखनीय उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्धि *'बूँद और समुद्र'* (१९५१) उपन्यास से मिली। इनके *'शतरंज के मोंहरे' (१९५९), 'अमृत और विष' (१९६६), 'एकदा नैमिष्यारण्ये' (१९७२), 'मानस का हंस' (१९७२), 'नाच्यो बहुत गोपाल' (१९७८) 'खंजन नयन' (१९८१), 'करवट (१९८५)'* आदि उपन्यास भी प्रकाशित हुए। कथानक की दृष्टि से 'नागर जी' के उपन्यासों को तीन कोटियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम भाग में वे उपन्यास आते हैं, जो सामाजिक यथार्थ से जुडे हुए हैं। इनमें मुख्य रूप से *'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष'* तथा *'नाच्यो बहुत गोपाल'* आदि उपन्यास आते हैं। इनमें समकालीन जीवन की सच्चाई का चित्रण हुआ है। इनमें भारतीय स्त्री के जीवन की त्रासदी और ममता का अंकन है। दूसरी कोटि के उपन्यासों का विषय १८५१ ई. से १९५० ई. की सदी का सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का अंकन करना है। इन उपन्यासों मे *'करवट'* और *'पीढियाँ'* प्रमुख हैं। ये दोनों उपन्यास अलग-अलग उपन्यासों के रूप में प्रकाशित होकर भी एक ही उपन्यास का गुच्छा है। 'नागर जी' ने *'पीढियाँ'* में नये दशक के राजनीतिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है। *'करवट'* उपन्यास में एक ही खत्री परिवार की तीन पीढियों का वर्णन किया है। इसके साथ ही तत्कालीन सामाजिक चेतना के विकास में योगदान करने वाली प्रगतिशील एवं प्रतिगामी शक्तियों की लडाई को प्रस्तुत किया है। वस्तुत: 'नागर जी' का उद्देश्य इस समय हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और नैतिक मूल्यों के परिवर्तन का इतिहास प्रस्तुत करना है। अंग्रेजों के आने से भारतीय सामाजिक संरचना, रहन-सहन का तरीका और सोच में आये बदलाव का चित्रण 'नागर जी' ने बहुत सूक्ष्मतापूर्वक किया है। 'नागर जी' के तीसरी कोटि के उपन्यासों में *'मानस का हंस'* व *'खंजन नयन'* नामक उपन्यास ऐतिहासिक कवि तुलसी और सूरदास के जीवन को आधार बनाकर लिखे गए है। *'शतरंज के मोंहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिष्यारण्ये'* प्राचीन और मध्यकालीन भारत के इतिहास और संस्कृति का चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार तीसरी कोटि में ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यास आते हैं। *'मानस का हंस'* 'नागर जी' के ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वप्रमुख है। इसके कथा संसार में राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ उपन्यासकार का उद्देश्य घटनाओं के माध्यम से सांस्कृतिक परिवेश को सजीव बनाना ही है। सामाजिक विडम्बनाओं के विरूद्ध तुलसी का व्यक्तिगत प्रतिरोध तथा विदेशी शासन के अत्याचारों का सामना करने के लिए जनता को जागृत और शक्तिशाली बनाने की तुलसीदास की योजना उपन्यासकार की मौलिक उपलब्धि है। इसी तरह *'खंजन नयन'* उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य सूरदास के भक्त और कवि व्यक्तित्व को उभारना है। जन्मान्ध बालक सूर के संघर्ष जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक-मनोवैज्ञानिक स्तर पर जीवन पर्यन्त चलता रहा।

इनके अलावा 'सन्हैयालाल ओझा', 'कृष्णचन्द्रशर्मा भिक्खु', 'देवराज', 'लक्ष्मीनारायण लाल', 'विष्णु प्रभाकर', 'नागार्जुन', 'राजेन्द्र यादव', 'फणीश्वरनाथ रेणू', 'नरेश मेहता',

'कमलेश्वर', 'कृष्ण बलदेव वैध', 'श्री लाल शुक्ल', 'हिमांशु श्रीवास्तव', 'शैलेश मटियानी', 'रामदरश मिश्र', 'बालशौरी रेड्डी', 'राजेन्द्र अवस्थी' आदि अनेक उपन्यासकारों ने स्वतन्त्रता पश्चात् (१९५०-१९८०) उपन्यासों की रचना की।

'सन्हैयालाल ओझा' के इस अवधि में दो ही उपन्यास अधिक लोकप्रिय हुए, जिनमें *'सर्वनाम'* (१९७६) और *'सम्भवामि'* (१९८३) प्रमुख है। इन उपन्यासों में बंगाल में हुए नक्सलवादियो के आन्दोलन का चित्रण किया गया है। पुरातन काल में आर्यो-अनार्यो के इतिहास पर आधारित उपन्यासों की रचना ओझा जी द्वारा की गयी है। अपने दूसरे उपन्यास में देव सभ्यता की तर्कसंगत व्याख्या करते हुये उसके समाजवादी, लोकतान्त्रिक और आधुनिक मानवीय दृष्टि से सम्पन्न समाज की कल्पना की है। 'ओझा जी' के सम्पन्न समाज की कल्पना के साथ ही 'कृष्णचन्द्र शर्मा जी' ने गैर ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की । 'शर्मा जी' ने समाज के पाखण्डी तत्वों, साहसिक चरित्र वाले पात्रों, आदर्शवादी विचारों आदि को आधार बनाकर कथा संसार की रचना की है।

'देवराज' ने इन दोनों ही उपन्यासकारों से अलग प्रेम की समस्याओं का अंकन अपने उपन्यासों में किया है। उनके उपन्यास *'बाहर-भीतर'* (१९५४) में मध्यवर्ग के परिवारों में एक पत्नी और बहू के रूप में नारी की दुर्दशा का अंकन किया है। 'देवराज' का सबसे चर्चित उपन्यास *'अजय की डायरी'* (१९६०) में असफल वैवाहिक जीवन और प्रेम की टकराहटों को उजागर किया है, अतः हम कह सकतें है, कि 'देवराज' के उपन्यासों की केन्द्रीय सोच स्त्री की दुदर्शा एवं मध्यवर्गीय परिवारों के नीतिपरख मानदण्ड एवं प्रेमरूपी समस्याओं का वर्णन है।

'लक्ष्मीनारायण लाल' के उपन्यासों की पृष्ठभूमि अधिकतर मध्यवर्गीय नागरिक जीवन और ग्रामीण जीवन से सम्बन्ध रखती है। 'देवराज' की ही तरह प्रेम की विभिन्न मनोंदशाओं का अंकन इनके उपन्यास *'पौधा'* (१९५१) और *'रूपाजीवा'* (१९५९) में किया गया है। इसी तरह 'विष्णु प्रभाकर' के उपन्यासों में भी स्त्री की नियति की त्रासदी का अंकन हुआ है। उनकें उपन्यासों *'निशिकान्त' (१९५५), 'धर्मयुग' (१९५७) और 'दर्पण' (१९६८)* आदि में नारी त्रासदी को उजागर किया है। नारी कहीं त्यागने,कहीं विधवा होने, कहीं दहेज के कारण जीवन-भर दुख भोगने के लिए मजबूर हो जाती है। अतः 'विष्णु प्रभाकर जी' के उपन्यासों में स्त्री समस्या को ही प्रमुख रूप से मुख्य केन्द्र बिन्दु में रखा गया है।

एक अन्य उपन्यासकार 'देवेन्द्र सत्यार्थी' के उपन्यासों में *'कठपूतली' (१९५४), 'ब्रह्मपुत्र' (१९५६), 'दूधगाछ' (१९८८), 'कथा कहो उर्वशी' (१९६१)* की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है, कि उनका राष्ट्रीय भावना से अनन्त लगाव है। अनेक विविधताओं से भरी प्रकृति का चित्रण उपन्यासकार की राष्ट्र रूपी भावना का ही परिचायक है। 'सत्यार्थी जी' के पश्चात् 'राजेन्द्र यादव' ने *'कुल्टा', 'शह और मात', 'सारा आकाश', 'अनदेखे अनजान पुल'* और *'मन्त्रबुद्धि'* आदि उपन्यासों का चित्रण किया है। उपन्यासों में युवक-युवतियों के प्रेम और दाम्पत्य जीवन का अंकन करना ही इनका प्रमुख उद्देश्य है। स्त्री अंकन के साथ-साथ कहीं-कहीं पर राजनीतिक नेताओं के शोषण का भी चित्रण किया है। 'राजेन्द्र यादव' के पश्चात् 'अमृत राय' के उपन्यासों में उनकी साम्यवादी प्रतिबद्धता अधिक उजागर हुई है। इनके उपन्यास *'बीज'* (१९५२) को राजनीतिक उपन्यास माना जा सकता है, जिसमें भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता को आम आदमी के लिए मिथ्या स्वतन्त्रता कहा गया है। इस समस्या के साथ ही समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण भी किया है ।

'प्रभाकर माचवे जी' ने इस समय में अनेक उपन्यासों *'साँचा', 'जो', 'किशोर', 'तीस चालीस पचास', 'दर्द के पैबन्द', 'धूत', 'लक्ष्मी बेन', 'कहाँ से कहाँ'* की रचना की। लगभग एक दर्जन उपन्यासों की रचना के पश्चात् भी कुछ को छोडकर 'माचवे जी' इतिहास में कोई महत्वपूर्ण स्थान बनाने में असफल रहें। 'माचवे' उस दौर के लेखक हैं, जब प्रयोगवाद की हवा बह रही थी, अत: उनके उपन्यासों में समकालीन सामाजिक, मनौवैज्ञानिक समस्याएँ, राष्ट्रवाद, वर्ग द्वेष, पीढीवाद, गाँधीवाद, शिक्षा का प्रसार, छात्र आन्दोलन, धर्म, समाज, योगवाद, नक्सलवाद आदि से जुडे प्रश्न और विचार उनके उपन्यासों में भरे हुए है। उनके उपन्यासों में संवेदना की गहराई अधिक दिखाई नहीं देती है। 'माचवे जी' के समय 'फणीरवरनाथ रेणू' ने हिन्दी साहित्य में कदम रखा और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् १९५४ में उनका प्रसिद्ध उपन्यास *'मैला आँचल'* प्रकाशित हुआ। भारत को आजादी मिलने की अवधि में गाँवों की सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक सच्चाई यह थी, कि गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, रूढिवादिता आदि अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही थी। उन्हीं का अंकन उपन्यासकार ने इस उपन्यास में किया है। अंचल में रहने वाले लोगों की निर्धनता, उनका मानसिक रूप से पिछडापन, जमींदारों द्वारा शोषण, जातिगत आधार पर आपस की फूट आदि समस्याएँ 'रेणू जी' के उपन्यास में परिलक्षित हुई है ।

'श्री लाल शुक्ल' व्यंग्यकार के रूप में अधिक जाने जाते हैं। उनके उपन्यास *'रागदरबारी', 'सीमाएँ टूटती हैं', 'मकान'* आदि उपन्यासों में व्यंग्यात्मकता को ही अधिक प्रधानता दी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी ग्रामीण कस्बों के अनेक गाँव आज भी निर्धनता, गरीबी, अशिक्षा, शोषण आदि अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरे हुए हैं। 'श्री लाल जी' ने अपने उपन्यासों में समकालीन समाज की इन विसंगतियों पर सटीक एवं करारा व्यंग्य किया है। 'हिमांशु श्रीवास्तव जी' ने अपने उपन्यासों में सच्चाई का अंकन किया है। उनके उपन्यास *'नदी फिर बह चली' (१९६१), 'रथ से गिरी बाँसुरी', 'रिहर्सल' (१९७८), 'पिछली रात का अँधेरा' (१९८०)* आदि में अधिकतर ग्रामीण जीवन का ही चित्रण किया है। इन उपन्यासों के अनुभव 'श्रीवास्तव जी' के स्वयं के अनुभव है, जो सत्य पर आधारित है। 'श्रीवास्तव जी' गाँव और शहर की जिन्दगी का अंकन प्रकृतिवादी पद्धति पर करते हैं। उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य, दलित वर्ग की गरीबी, निरक्षरता, अन्धविश्वासग्रस्तता, दलित समाज की स्त्रियों का शोषण आदि को उजागर करना है। 'बलभद्र ठाकुर' के उपन्यास आँचलिकता से विशेष से सम्बन्ध रखते हैं। अपने उपन्यासों *'मुक्तावली' (१९३८), 'नेपाल की वो बेटी', (१९५९), 'देवताओं के देश में' (१९६०), 'घने और बने' (१९६१)* तथा *'लहरों की छाती पर' (१९६२)* में अभाव और निर्धनता का दुख झेलती, जीने के लिए कठिन संघर्ष से गुजरती नेपाल की नोटियाल जाति का अंकन किया है। 'बलभद्र ठाकुर' के उपन्यासों में भारत के अलग-अलग अँचलों के प्राकृतिक और सांस्कृतिक सौन्दर्य, वहाँ के जन-जीवन के संघर्ष, नारी जाति के प्रगतिशील रूप का अंकन किया गया है ।

'शैलेश मटियानी जी' ने इस समय काफी प्रसिद्ध उपन्यासों की रचना की, जिनमें *'कबूतरखाना' (१९६०), 'हौल्दार' (१९६१), 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' (१९६१), 'मान सरोवर के हंस' (१९६२), 'एक मूठ सरसों' (१९६२), 'दो बूँद जल' (१९६६), 'पुनर्जन्म के बाद' (१९७०), 'सर्पगन्धा' (१९७९), 'उगते सूरज की किरण' (१९७६), 'आकाश कितना अनन्त है' (१९७९)* आदि प्रमुख है। इन उपन्यासों में *'सर्पगन्धा'* विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें भारतीय राजनीति में भीतर से राक्षस और ऊपर से सन्त दिखने वाले नेताओं का अंकन किया गया है। आरक्षण के प्रश्न को भी 'मटियानी जी' ने तर्कपूर्ण चिन्तन और गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। अपने कुछ उपन्यासों में लेखक की आधुनिकता से प्रभावित प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं। 'माटियानी जी' प्रमुख रूप से दलित विमर्श के उपन्यासकार हैं, जिसमें नारी

और दलित वर्ग की प्रमुख भूमिका है। 'राजेन्द्र अवस्थी' ने भी गरीबी, प्राकृतिक प्रकोप, शोषण, अन्धविश्वासों, रूढियों और पुरानी मान्यताओं में जकडी जिन्दगियों का वर्णन अपने उपन्यासों *'उतरते ज्वार की सीपियाँ' (१९६८), तथा 'जाने कितनी आसैं'* (१९६९) में किया है। 'विधासागर नौटियाल' ने भी *'उलझे रिश्ते'* (१९५९) में दाम्पत्य जीवन के अनसुलझे रिश्तों का अंकन किया है।

अतः अनेक उपन्यासकारों के उपन्यास का अध्ययन करने पर पता चलता है, कि इस समय (१९५०-१९८०) के उपन्यासकारों में ग्रामीण अँचलों, ऐतिहासिकता, दलित वर्ग का शोषण, स्त्री की दुर्दशा आदि उनकी केन्द्रीय सोच के रूप में परिलक्षित हुई है।

१.४ सन् १९८० ई. से अब तक के उपन्यास

सन् १९८० ई. के पश्चात् के उपन्यासकारों में 'शरद पगारे', 'चन्द्रकान्ता', 'राजकृष्ण मिश्र', 'रामदेव धुरन्दर, 'राजी सेठ', 'शत्रुध्न', 'नासिरा शर्मा', 'कमल कुमार', 'विरेन्द्र सक्सेना', 'प्रभा खेतान', 'मैत्रेयी पुष्पा', 'चित्रा मुद्‌गल', 'वीरेन्द्र जैन','निर्मल वर्मा' आदि प्रमुख है। इस समय के उपन्यासों में आधुनिक परिवेश को लेकर उपन्यासों की रचना की गयी है। इनमें 'निर्मल वर्मा' का *'रात का रिपोर्टर' (१९८९) व 'अन्तिम अख्यान' (२०००)* प्रमुख हैं। 'निर्मल वर्मा' के उपन्यासों का अध्ययन करे तो, वे प्रमुखत: निराशा, अवसाद, सन्त्रास भाव एवं मन की अन्धकार भरी गुफा से भटकने वाली चेतना के उपन्यासकार हैं। *'रात का रिपोर्टर'* में 'निर्मल वर्मा' ने आतंक अविश्वास व मानसिक यातनाओं का अंकन किया है। इसकी पृष्ठभूमि इन्दिरा गाँधी द्वारा लगायी गयी आपातकालीन स्थिति है। अत: जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टि की पुष्टि 'निर्मल वर्मा' के इस उपन्यास में पाई जाती है। 'निर्मल वर्मा' का *'अन्तिम आख्यान'* भी संवेदना की दृष्टि से अन्य उपन्यासों से अलग नहीं है।

सन् १९८१ ई. में ही 'संजीव' का प्रथम उपन्यास *'किसनगढ के अहेरी'*, १९८४ ई. में *'सर्कस'* और *'सावधान नीचे आग है'* नामक उपन्यास १९८६ ई. में प्रकाशित हुए। 'संजीव' का उपन्यास *'सर्कस'* सर्कस कर्मियों के जीवन पर आधारित उपन्यास हैं। *'सावधान नीचे आग है'* में झरिया क्षेत्र की कोयला खान की एक दुर्घटना को केन्द्र में रखकर कोयला माफियाओं, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, शोषक और क्रूर रूप का अंकन किया है। कोयले की खान में किसी दुर्घटना दहशत और उससे डरे लोगों की सच्चाई का यथार्थ अंकन किया है।

इसी समय एक ओर उपन्यासकार 'राजकृष्ण मिश्र' का *'दारूल सफा'* (१९८१) नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसमें समकालीन राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और दाँवपेंच का विश्वसनीय चित्रण किया है। *'दारूल सफा'* में लेखक ने समकालीन सत्ता के लालची राजनीति और राजनीतिक मूल्यों की घिनौनी परिणति का चित्रण किया है। आजादी के पश्चात् राजनीतिक ही नहीं, सामाजिक और नैतिक स्तर पर भी हमारा कितना पतन हुआ है, इसी का अंकन उपन्यासकार ने जीवन्त रूप में किया है।

'राजकृष्ण मिश्र' ने तो सत्ता के लालची नेता लोगों को केन्द्र बिन्दू बनाकर अंकन किया

है। किन्तु 'चन्द्रकान्ता' के उपन्यासों *'अर्थान्तर'* और *'अन्तिम साक्ष्य'* (१९८१), *'बाकि सब खैरियत है' (१९७३)* ,*'ऐलान गली जिन्दा है' (१९८४)*, *'यहाँ विस्तता बहती है'(१९९२)* और *'अपने-अपने कोणार्क'* (१९९५) आदि में भावनात्मक भटकन, बैचेनी, अन्धविश्वास, परम्परावादिता, व्यक्तिगत स्वार्थ का अंकन किया है। *'ऐलान गली जिन्दा है'* और *'यहाँ विस्तता बहती हैं'*, दोनों ही कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। इनके *'ऐलान गली जिन्दा है'* में कई पीढियों से एक साथ रहते-जीते समाज के परिवेश को एक गहरे दर्द के साथ उकेरा है। यहाँ की सांस्कृतिक विशेषताएँ अभी भी जिन्दा है और बाहर चले जाने वाले लोग भी इसे नहीं भूला पाते।

इसके पश्चात् 'गिरिराज किशोर जी' का भी *'ढाई घर'* (१९९१) में तीन पीढियों के यथार्थ का अंकन किया है। इसमें औपनीवेशवादी सामन्ती व्यवस्था को भी दिखाया है। अब तक देश आजाद हो चुका था, पर नये नेता वर्ग स्वयं को जनता का अंग नहीं, बल्कि भगवान या फिर सब कुछ समझने लगे थे। *'ढाई घर'* उपन्यास में नारी को केवल भोग की वस्तु समझा गया है। ज्ञान और शिक्षा से वंचित, अपने घरों की चारदिवारी में कैद, पुरूष समाज के शोषण और अत्याचार को ही अपना जीवन समझ लेना ही उनके जीवन का ध्येय बन गया था। परन्तु इस उपन्यास की पात्र सोना इस चारदीवारी से निकलने के लिए विद्रोह करती है। वह उस स्थिति में रहना स्वीकार नहीं करती और पुरूष समाज के सामने विद्रोही रूप में खडी हो जाने वाली स्थिति का वर्णन इस उपन्यास में वर्णन किया गया है। अतः इस प्रकार 'किशोर जी' ने इतिहास के इस दौर को सामाजिक व राजनीतिक चेतना, गहरी संवेदनशीलता और तर्कसंगत चित्र के साथ पेश किया है। 'किशोर जी' केवल बीते हुए कल की यादों में ही नहीं खोये रहे, बल्कि वर्तमान समय के सवालों व संकटों से भी टकराते हैं। उनके उपन्यास *'तीसरी सत्ता'* (१९८२) में समकालीन जीवन की समस्याओं को उठाया गया है। इसका विषय आज की स्त्री के वैवाहिक सम्बन्धों में उत्पन्न समस्याओं का चित्रण करना है। आधुनिक स्त्री पढी-लिखी और आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होकर भी पुराने अन्धविश्वासों व मान्यताओं से अलग नहीं हो पायी है। उसका पति उसे वस्तु समझता है, उसके चरित्र पर शक करता है तथा उसे मानसिक तौर पर परेशान करना भी अपना अधिकार समझता है। *'यथाप्रस्तावित'* (१९८२) उपन्यास में सरकारी कर्मचारियों के उपेक्षापूर्व रवैये व क्रूरता से भरे व्यवहार का प्रभावशाली अंकन किया है। इसमें दलित वर्ग के प्रति समाज का अमानवीय व्यवहार देखने को मिलता है। सरकारी दफ्तरों में व्याप्त भ्रष्टतन्त्र व

तिकडम का कठोर चित्रण किया गया है। संविधान द्वारा सरकारी नौकरियों में आरक्षण की सुविधा होने से दलित वर्ग के लोग सरकारी दफ्तरों तक तो पहुँच जाते है, किन्तु उच्च वर्ग की मानसिकता व जाँति-पाँति के भाव के कारण इन्हें काफी समस्याओं से संघर्ष करना पडता है। स्कूलों में खेल के मैदान में, भोजनालय में, मेहमान भवन में सब जगह दलित वर्ग को अपमानित होना पडता है। इसी का वर्णन अपने इस उपन्यास में 'किशोर जी' ने किया है। अन्त में 'गिरिराज किशोर जी' के दो उपन्यास *'असलाह'* (१९८७) और *'अर्न्तध्वंस'* (१९९०) का विषय आधुनिक विज्ञान से क्षीण होती मानवीय संवेदना का यथार्थ है। *'असलाह'* उपन्यास के अनुसार आज की दुनिया में हथियारों की होड लगी है। सब देश, चाहे जितना भी मिल जाए, वह हथियार संग्रह करना चाहते हैं। *'अर्न्तध्वंस'* में विकसित देश जैसे कि अमेरीका में मानव विरोधी वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं, वे मानवीय संवेदना के सबसे बडे दुश्मन है, यही सवाल उपन्यासकार ने इस उपन्यास में उठाया है। *'गिरमिटिया'* (१९९९) इस समय का उनका अन्तिम उपन्यास है। *'गिरमिटिया'* (१९९९) उपन्यास में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी द्वारा चलाए गए सत्याग्रह आन्दोलन को अपना कथ्य विषय बनाया है। बीसवीं शताब्दी के लगभग अन्त में महात्मा गाँधी पर लिखना एक बडी चुनौती भरा काम है। गाँधी जी इतिहास पुरूष है, अत: लोगों की श्रद्धा को आघात नहीं पहुँचातें हुए, उन्हें उपन्यास का विषय बनाना बडा ही मुश्किल कार्य है, किन्तु 'किशोर जी' ने सफल रूप से निभाया है।

दलित वर्ग की प्रमुख समस्या को विषय बनाकर ही 'भीष्म साहनी' ने अपने उपन्यासों की रचना की। *'तमस'* उपन्यास की अद्‌भुत सफलता के पश्चात् 'भीष्म जी' ने *'कुन्तो'* (१९९३) व *'नीलू नीलिमा निलोफर'* (२०००) आदि का लेखन किया। इसमें *'कुन्तो'* पात्र के द्वारा स्त्री की नियति को उजागर करने का प्रयास किया गया है। पुरूष प्रधान समाज में नारी को पति की डाँट फटकार सुनने के लिए विवश होना पडता है, न चाहते हुए भी उससे तमाम उम्र उसी दुर्दशा के साथ जीना पडता है। हमारे देश में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही अपने-अपने संस्कारो से इस प्रकार जुडें हुए है, कि रोटी और बेटी पर दोनों का मिलना नामुमकिन सा लगता है। आज भी प्रेमवश हिन्दू और मुस्लिम के मध्य विवाह सम्बन्ध अनेक तरह के दंगों का विषय बन जाता है। अगर कोई युवक-युवती प्यार में पड कर इस सामाजिक मानसिकता को चुनौती देता है, तो उसे विभिन्न धर्मो के लोग अपना दुश्मन मान लेते हैं और उसका परिणाम उन्हें भोगना पडता है। अत: आज के समाज का यह नंगा सच 'भीष्म जी' ने *'नीलू निलिमा निलोफर'*

उपन्यास में वर्णित किया है।

इसी तरह 'विवेकी राय' के समस्त उपन्यासों में गरीबी, निर्धनता, मजदूरों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन अधिक मात्रा में मिलता है। इनके उपन्यासों का कथा क्षेत्र पूर्वाचँल है। इन्होंने अँचल के गाँवों, खेत-खलिहान, मिट्टी, फसलों, नदी-नालों, पंचायतों, स्कूलों का ही नहीं, बल्कि लोगों की जीने की जीवन-शैली, आर्थिक स्थिति, जीवन संघर्ष, लोक मान्यताएँ आदि का बहुत ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। *'सोना माटी'* (१९८३) में करइल की फसलों की सुन्दरता वहाँ की माटी की सोना उगलने की क्षमता तथा भाट के स्वभाव का सजीवता के साथ वर्णन किया है। इसके साथ ही उपन्यासकार ने वहाँ के रहने वाले लोगों के संस्कारों, उत्सव, त्यौहारों व लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त होने वाली अनुभूतियों को मार्मिकता के साथ अंकित किया हैं। पूर्वाचँल क्षेत्र के बहुत सी आबादी के जीवन का यथार्थ सत्य यह है, कि वे आर्थिक विकास की नजर से पिछडे हुए हैं। वे सभी गरीबी की रेखा के अन्दर जीवन व्यतीत करते हैं। वहाँ ज्यादातर लोग अशिक्षा और अज्ञान के अँधेरें में डूबे हुए हैं। यह वह क्षेत्र है, जहाँ जमींदारों द्वारा छोटे किसानों और मजदूरों का शोषण किया जाता है। यहाँ गाँवों के विकास के नाम से शुरू की ज़ाने वाली सरकारी योजनाएँ भूमिपतियों, इंजीनियरों, ठेकेदारों की तिजोंरियाँ भरने में खत्म हो जाती है और आम जनता को केवल कागजी विकास के नाम से ही सन्तोष करना पडता है। यहाँ विद्यालय का नाम एक मजाक बन गया है और चुनावी लोकतन्त्र का बिगडा हुआ चेहरा हमारे सामने आता है। अत: उपन्यासकार ने ग्रामीण अँचलों में रहने वाले गरीबों के शोषण तथा पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने का अंकन इस उपन्यास में किया है।

'विवेकी राय' के ही इस समय के एक दूसरे उपन्यास *'समर शेष है'* (१९८८) में भी शोषण के विरूद्ध आवाज उठायी गयी है। इसकी भी विषयवस्तु पहले उपन्यास की ही तरह पूर्वाचँल है, इस क्षेत्र के किसान और मजदूर लोग काफी बडे पैमाने तक अन्याय सहने के पश्चात् अब विद्रोही मुद्रा में आ गए हैं। इन्होंने भूमिपतियों तथा शोषण व अत्याचार पर आधारित व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष छेड दिया है। 'राय जी' के अनुसार भारत छोडो आन्दोलन के बाद में पूर्वाचँल के लोगो को हिला देने वाली दूसरी भयावह त्रासदी भारत पर चीन द्वारा आक्रमण कर दिए जाने की थी। इस चीनी आक्रमण से भारतीय जनता की प्रतिक्रिया का चित्रण ही *'मंगल भवन'* (१९९४) उपन्यास का उद्देश्य है। चीन और भारत का युद्ध दो स्तरों पर लडा जा रहा था। सीमा पर सिपाही लड रहे थे, तो निर्धन और राजनीति को नहीं समझने वाले ग्रामीण

भी अपने राष्ट्र के लिए लड रहे थे। मनुष्य के मूल्यों के हनन का चित्रण 'राय जी' ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में भी किया है। पर *'मंगल भवन'* में वह ओर भी तीखेपन के साथ सामने आता है। 'विवेकी राय' का अन्तिम उपन्यास *'अमंगलहारी'* (२०००) में तो *'मंगल भवन'* उपन्यास की ही कथा का विस्तारण किया गया है।

'मंजूर एहतेशाम जी' का इसी समय *'दास्तान-ए-लापता'* (१९९५) उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसका कथ्य विषय कुछ इस प्रकार है, कि हम जब भी अपने एक ऐसे लापता के साथ अपना जीवन बीताते हैं, जो हम होते हुए भी हम नहीं होता है। हम सब मनुष्यों में विभिन्न प्रकार की असमानताएँ होती है, सभी मनुष्य एक जैसे नहीं है, इसके बावजूद लगता है, कि सबसे लापता आपस में एक-दूसरे से बहुत मिलते-जुलते और एक समान होते हैं और किसी भी लापता को समझना किसी इन्सान को समझने से आसान काम है। अपनी इसी मनोवैज्ञानिक सोच के उपन्यासकार 'मंजूर एहतेशाम जी' ने इस उपन्यास में अंकित करने की कोशिश की है।

'नासिरा शर्मा जी' एक महिला साहित्यकारा हैं, इन्होंने मुस्लिम समाज को लेकर उपन्यास लिखे हैं। जिनमें *'शाल्मली' (१९८७), 'ठीकरे की मंगनी' (१९८९)* और *'जिन्दा मुहावरें'* (१९९३) आदि उपन्यास इस समय में प्रकाशित हुए। इनमें *'शाल्मली'* और *'ठीकरे की मंगनी'* नामक उपन्यास उल्लेखनीय है। इनमें आधुनिक समाज की भारतीय नारी का वर्णन किया है। *'शाल्मली'* में 'नासिरा जी' ने एक हिन्दू परिवार को और *'ठीकरे की मंगनी'* उपन्यास में मुस्लिम परिवार को अपने लेखन का विषय बनाया है। परम्परागत हिन्दू समाज में पत्नी अगर पति से अलग हो जाए तो उसका कोई व्यक्तित्व मान्य नहीं है। हिन्दू नारी संहिता ने आज की नारी को अपनी मजबूत पकड से जकड रखा है और उसे मुक्त होने नहीं दे रहा है। आधुनिक भारत में नारी को अनेक संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए है, इसके बावजूद नारी पारिवारिक और सामाजिक तौर पर शोषित की जाती है। 'नासिरा जी' परिवार को टूटने से बचाने के लिए स्त्री को आर्थिक रूप से निर्भर होना प्रमुख मानती है। 'नासिरा जी' के अनुसार घर को त्याग देना अच्छी बात नहीं है, बल्कि वे घर के साथ-साथ औरतौं के हक का समर्थन करती है। औरत को उसका अधिकार मान-सम्मान अवश्य मिलना चाहिए, इसका वे समर्थन करती है। *'ठीकरें की मंगनी'* का कथानक मुस्लिम स्त्रियों से जुडा हुआ है। मुस्लिम समाज में भी नारी की सामाजिक स्थिति बहुत ही गम्भीर है। इस उपन्यास में स्त्रियों ने रूढियों एवं अन्धविश्वासों से भरे समाज की घुटन से बाहर निकलकर अपनी एक अलग पहचान बनाने की कोशिश की

है। *'ठीकरें की मंगनी'* उपन्यास में लडकी के जन्म लेते ही उसकी सगाई एक लडके के साथ कर दी जाती है। इसी के साथ उसकी जिन्दगी के पच्चीस साल बीत जाते हैं, उसका मंगेतर अच्छा इंसान नहीं है और अवसर का फायदा भी उठाना चाहता है। उसके मंगेतर में कठोरता तथा संवेदना का अभाव दिखाई देता है, वह कोमल भावनाओं को ठेस पहुँचाने में भी दया भाव नहीं रखता। इस उपन्यास में महरूख पात्र इसी समस्या की शिकार होती हैं। यही घटना उसके तमाम जीवन को बिखेर देती है। किन्तु इस सब विकल परिस्थितियों के बावजूद, वह स्वयं को संभाल लेती है और अपने लिए जीवन जीने का अलग मार्ग चुनती है। वह मार्ग है, गाँव के दीन–दुखी लोगों की सेवा व सहायता करना, इसी काम को महरूख अपना जीवन जीने का मकसद बना लेती है। अत: इस उपन्यास में 'नासिरा जी' ने एक औरत की सच्चाई, दृढता व मजबूती तथा समाज से लडने की ताकत का अंकन किया है। इसके पश्चात् 'नासिरा जी' का *'जिन्दा मुहावरें'* (१९९३) नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ, किन्तु अधिक सफल नहीं हो सका। इसमें स्वतन्त्रता के पश्चात् जो भारत विभाजन हुआ उसी समय की परिस्थितियों का अंकन किया गया है। जब भारत देश का बँटवारा हुआ, तो कुछ मुस्लिम लोग तो यहाँ से पलायन कर गए, किन्तु कुछ भारत में ही रह गए। उस समय की प्रमुख समस्या अलगाव–बोध थी, जिसका अंकन इस उपन्यास में किया गया है। यहाँ तक की पाकिस्तान जाने वाले मुस्लिम परिवारों को वहाँ की जनता ने दिल से नहीं अपनाया इस सब में अगर देखें, तो धर्म के प्रति अन्धेपन की विजय होती है और मनुष्य की मनुष्यता का भी साथ–साथ हनन हो जाता है। 'नासिरा जी' ने बँटवारे के पश्चात् भारत में रह गए और पाकिस्तान में चले गए दोनों तरफ के मुस्लिम लोगों के दर्द व दुख को बडी ही सहानुभूति और संवेदना के साथ चित्रित किया है। अत: 'नासिरा जी' के अनुसार यह उपन्यास भारतीय मुस्लिम समाज के जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज है।

'नासिरा शर्मा' के पश्चात् हम 'प्रभा खेतान' के उपन्यासों का अध्ययन करेगें। 'प्रभा खेतान' इस अवधि से पूर्व ही हिन्दी साहित्य में स्थापित हो चुकी थी। उन्होंने अधिकतर स्त्री समस्याओं को लेकर ही उपन्यास रचना की है। इस समय भी *'आओ पेपे घर चले'* (१९९०) की रचना की। इस उपन्यास में भी स्त्री चित्रण को ही प्रमुखता दी गई है। *'आओ पेपे घर चले'* उपन्यास में उसकी ही एक पात्र स्त्री के रूप में एक जगह अपना विचार जाहिर करते हुए कहती हैं, कि *'नारी कहाँ नहीं रोती और कब नहीं रोती? वह जितना भी रोती है, उतनी ही औरत होती जाती है।'* अत: इस कथन में नारी जाति की मार्मिक संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है। बरसों से

स्त्री पुरूष समाज के शोषण और दबाव की शिकार रही है। हिन्दी उपन्यास में हम देखें, तो बीसवीं सदी के पश्चात् से ही अनेक उपन्यासकारों ने नारी के शोषित जीवन को अपना आधार बनाकर उपन्यास लिखे हैं। किन्तु दूसरे देश अर्थात् अमरीकी स्त्री की जिन्दगी के भयानक सत्य को सामने लाने वाला यह पहला उपन्यास है। *'आओ पेपे घर चलें'* के पश्चात् 'प्रभा जी' के अन्य उपन्यास प्रकाशित हुए, जिनमें *'तालाबन्दी' (१९९१), 'छिन्नमस्ता' (१९९३), 'अपने-अपने चेहरे'* (१९९४) और *'पीली आँधी'* (१९९६) आदि प्रमुख है। *'छिन्नमस्ता'* उपन्यास में 'प्रभा जी' के अनुसार एक शादीशुदा औरत को उसका पति उतनी ही आजादी देने का मन रखता है, जितना कि किसी बडे पिंजरे में बन्द जानवर को दिया जा सकता है। इस उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र प्रिया को 'प्रभा जी' स्वतन्त्र बनाने का प्रयास उपन्यास में करती है, तो इसी आजादी को पाने हेतू प्रिया को अपने घर का त्याग करना पडता है। प्रिया आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होना चाहती है और कई कोशिशों के पश्चात् जब वह आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाती है, तो पति को यह बिल्कुल पसन्द नहीं आता और बात इस कदर बिगड जाती है, कि प्रिया को घर छोडना पडता हैं। अर्थात् एक स्त्री जब आजाद हो जाती है, तो पुरूष समाज या परिवार उसे सहन नहीं कर पाता और अन्त में अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी का अंकन इस उपन्यास में हुआ है। इसके पश्चात् *'अपने-अपने चेहरे'* नामक उपन्यास में पति परमेश्वर एक अन्य औरत को घर में लाना चाहता है, उसकी पत्नी द्वारा विरोध किए जाने पर उसको किस तरह मानसिक व शारीरिक यातना को सहन करना पडता है, इसीका चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

'प्रभा जी' का अपना यह मानना है, कि एक स्त्री तभी स्वतन्त्र हो सकती है, जब वह कमाती हो अर्थात् आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो जाए तथा अपना खर्चा-पानी स्वयं चला सकें। ऐसा करने पर ही, वह इस पुरूष समाज से आजाद हो सकती है। *'पीली आँधी'* उपन्यास में भी 'प्रभा जी' ने नारी समस्या को ही क्रेन्द्रीत किया है। इसमें सर्वप्रथम तो एक स्त्री का शोषण तथा उसके पश्चात् उस स्त्री के द्वारा किया जाने वाला विद्रोह का अंकन किया है। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र सोमा जिसका पति नपुंसक है, उसकी पत्नी होने पर भी वह उसके परिवार के लिए बलि चढ जाती हैं। वह स्वयं ही पारिवारिक मान-सम्मान के लिए इसी प्रकार जीवन जीने को अभिशप्त है। धीरे-धीरे वह उसका विद्रोह करने लगती हैं और जब बात सीमा के बाहर निकल जाती हैं, तो वह घर की चौखट लांघ जाती है। इसी परिवार में तीन पीढियों की औरतें चाची, बडी माँ और सोमा अपना-अपना दुख दर्द अपने-अपने ढंग से सहती रहती हैं। अत: स्त्री पीडा

का 'प्रभा जी' ने बडी ही मार्मिकता के साथ अंकन किया है।

'मैत्रेयी पुष्पा जी' भी इसी धारा की उपन्यासकार है। इनका प्रथम उपन्यास *'स्मृति दंश'* १९९० ई. व दूसरा *'बेतवा बहती रही'* १९९३ ई. में प्रकाशित हुआ। दोनों ही उपन्यासों में 'प्रभा जी' की ही तरह पुरूष समाज द्वारा नारी पर होने वाले अत्याचार का मार्मिक अंकन 'पुष्पा जी' द्वारा किया गया है। इसके पश्चात् 'पुष्पा जी' का एक अन्य उपन्यास *'इदन्नमम्'* १९९४ ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें 'पुष्पा जी' ने बुन्देलखंडी जीवन के चित्रण को उकेरा है। पहाडों के अँचल से सजी धरती, पहाडों में रहने वाले लोगों के जीवन के यथार्थ को दिखाया गया है। *'इदन्नमम्'* उपन्यास की कथा पात्र मन्दाकिनी एक जुझारू औरत है, वह परिवार के द्वारा बनाये गए बन्धनों का त्याग कर देती हैं और विद्रोह कर शोषण के खिलाफ खडी हो जाती हैं। वह शोषण करने वाले ठेकेदारों, नेताओं के विरूद्ध आदिवासियों व अन्य ग्रामीणों को बचाना चाहती है। इसके पश्चात् 'पुष्पा जी' का *'झूला नट' (१९९४)* एवं *'चाक'* (१९९७) उपन्यास प्रकाशित हुए। इन दोनों ही उपन्यासों में लेखिका ने खेत–खलिहानों से जुडे हुए जाटों का चित्रण किया है। इन दोनों ही उपन्यासों का केन्द्रीय विषय गाँवों के परिवेश में उभरती नयी नारी चेतना है। *'चाक'* उपन्यास में रूढियों एवं अन्धविश्वासों में जकडी पुरानी पीढी के हठ का चित्रण है, इसमें नारी संहिता का विरोध करने वाली स्त्री का जीवन जीने का अधिकार छीन लिया जाता है। उसे जीने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है तथा इस परम्परागत समाज में अगर किसी स्त्री की हत्या भी कर दी जाती है, तो यह उनके लिए मामूली सी बात होती है। इसे सब जल्दी ही भूला देते हैं और वह हत्या करने वाला हत्यारा मान सम्मान के साथ समाज में हक से जीता रहता है। इस सबके विरोध में कोई भी खडे होने की हिम्मत नहीं करता। इस अत्याचारी एवं क्रूर परिवेश में 'पुष्पा जी' ने जो नारी नियति का चित्र सामने रखा है एवं उनके विषय में एक ताजगी प्रतीत होती है। इस भारतीय समाज में न केवल अग्रिम समाज की स्त्री बल्कि पिछडी जाति की स्त्री को भी प्रेम करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। अगर कोई इन सामाजिक नियमों के विरूद्ध प्रेम करने के अधिकार को तोडता है, तो इस अपराध के लिए उसकी या तो हत्या कर दी जाती है या फिर आग में जला दिया जाता है। *'अल्मा कबूतरी'* (२०००) 'पुष्पा जी' का अन्तिम उपन्यास है। इसमें लेखिका ने यह कहने की कोशिश की है, कि भारतीय समाज बहुत ही बडे भू–भाग में फैला हुआ है। इसमें अनेक ऐसी जनजातियाँ है, जो स्वतन्त्रता का मतलब ही नहीं समझती तथा अपने पुराने रीति रिवाजों के साथ ही जीती रहती हैं। हमारा उच्च समाज

उन्हें छोटे व घृणा की दृष्टि से देखता है। पुलिस विभाग के कर्मचारी भी जब देखो उसे चारा समझ कर खा लेते हैं, जबकि देश स्वतन्त्र होने के पश्चात् इन सभी जनजातियों को समान नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो गया है। किन्तु इन्हें किसी भी अधिकार के बारे कुछ जानकारी नहीं दी जाती हैं। *'अल्मा कबूतरी'* उपन्यास में 'पुष्पा जी' ने बुन्देलखंड क्षेत्र में रहने वाली कबूतरा जनजाति के जीवन का अंकन किया है। इसमें भूरी और उसके बेटे समाज की लडाई लडते हैं और भूरी अपने बेटे रामसिंह और अपनी बेटी अल्मा द्वारा अपना सब कुछ दाँव पर लगा देती है। ऐसा करने के बावजूद लहूलुहान कबूतरा ही होते हैं। यह उपन्यास हारे हुऐ व्यक्तियों की कथा कहता है। इसलिए इसे पढकर पाठक दुखी हो जाता है। इसमें सभ्य कहे जाने वाले एक असभ्य समाज का चित्रण मिलता है। अल्मा की कथा को नारी विद्रोह की कहानी भी कही जा सकती है।

'मैत्रेयी पुष्पा' के पश्चात् एक और स्त्री उपन्यासकार 'चित्रा मुद्गल' का उपन्यास *'एक जमीन अपनी'* (१९९०) प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में 'चित्रा जी' ने कथ्य विषय की दृष्टि से महानगरों के जन-जीवन का अंकन किया है। महानगरों के विज्ञापन जगत, ग्लैमर, तिकडम, देह व्यापार आदि का वर्णन इसमें किया है। ऐसे गन्दे परिवेश में एक नारी चाहे कितनी भी योग्य हो, किन्तु पुरूष उसे भोग्य वस्तु के रूप में ही देखता है। प्रेमिका और पत्नी के रूप में एक आधुनिक नारी की स्थिति कितनी दुखभरी है, इसका अंकन 'चित्रा जी' ने बडी गहरी संवेदनशीलता के साथ इस उपन्यास में किया है। 'चित्रा जी' का ही एक दूसरा उपन्यास *'आपा'* सन् २००० ई. में प्रकाशित हुआ। इसका कथ्य विषय एक जवान लडकी नमिता के जीवन के कडे संघर्ष को बतलाया गया है। नमिता एक मध्यवर्गीय परिवार में पली-बढी है, वहाँ का माहौल घुटनभरा होता है। अतः वह उस घुटनभरे वातावरण को छोडकर महानगर के जलते हुए परिवेश में चली जाती है और वहाँ आग में तप-तप कर स्वयं को संघर्ष के लिए तैयार करती है। अतः 'चित्रा जी' के दोनों ही उपन्यासों में महानगरों में स्त्री की स्थिति का अंकन किया गया है।

इसी समय 'वीरेन्द्र जैन' का 'डूब' (१९९९) नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। *'डूब'* उपन्यास का कथ्य विषय मध्य प्रदेश के एक पिछडे अँचल की पीडा व दुख का चित्रण करना है। अनेक उपन्यासकारों ने अँचल विशेष को लेकर उपन्यासों की रचना की है, फिर अँचल चाहे पूर्णिया का हो या फिर कहीं ओर की, सबकी कहानी लगभग एक जैसी ही है। जैसे वहाँ के

लोगों का पिछडापन, निरक्षरता, शोषण व अन्धविश्वास की कहानी। पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले गरीबों का भी ठाकुरों व जमींदारों द्वारा शोषण किया जाता रहा है। राजनीतिक नेताओं को तो सिर्फ झूठे वायदे कर वोट हासिल करने की फिक्र होती है, वोट मिलने व जीत जाने के पश्चात् वे जनता जनार्दन को भुल जाते हैं। पिछडे गाँवों को मिलने वाले मुआवजे की धन-राशि का एक तिहाई या फिर उससे भी कम भाग ही उन तक पहुँच पाता है, बाकि बचे हुए धन को पदाधिकारी और साहूकार खा जाते हैं। इन्हीं सब बातों का अंकन 'वीरेन्द्र जी' ने *'डूब'* नामक उपन्यास में किया है। इनके अन्य उपन्यासों में *'पार'* १९९४ ई. व *'पंचनामा'* १९९६ ई. में प्रकाशित हुए। *'पार'* उपन्यास में विरेन्द्रजी ने *'डूब'* उपन्यास का ही विस्तार किया है तथा साहूकारों के शोषण के खिलाफ विद्रोह को दर्शाया गया है। *'पंचनामा'* उपन्यास में ऋषि मुनियों के आश्रमों में उत्पन्न होते भ्रष्टाचार को प्रकाशित किया गया है ।

इसी मध्य 'कृष्णा सोबती' के दो उपन्यास *'दिलोदानिश'* (१९९३) और *'समय सरगम'* (२०००) प्रकाशित हुए। जब भारत देश में मुस्लिम शासन चल रहा था, शनैः-शनैः एक मिली-जुली संस्कृति का भी विकास हो रहा था। अर्थात् नई संस्कृति हिन्दू व मुस्लिम संस्कृतियों दोनों का मिला-जुला रूप थी। इसमें रईस व जमींदार वर्ग के लोग भी शामिल थे। 'कृष्णा जी' ने *'दिलो दानिश'* में नई संस्कृति वाले मुस्लिम परिवेश का वर्णन किया है। 'कृष्णा जी' के द्वितीय उपन्यास *'समय सरगम'* में शहरों में रहने वाले बडे व मध्यम वर्ग के वृद्धों के जीवन में आने वाली तकलीफों का वर्णन किया है। आज के समय में शहरी परिवारों में जी रहे वृद्ध व्यक्यिों को अनेक समस्याओं से गुजरना पडता है। जीवन के अन्तिम पडाव में पहुँचने के बाद रोग-बीमारियों व चिन्ताओं से परेशान रक्तदाब से चिन्तित, डाक्टरों के खाने-पीने में अनेकों परहेज से परेशान वृद्ध व्यक्ति जीवन जीता है। इस उपन्यास में 'सोबती जी' ने वृद्ध लोगों की चंचल मानसिकता व किसी भी चीज को पाने की विवशता, शारीरिक कमजोरी व अकेलेपन को बडी ही मार्मिकता के साथ दिखाया गया है ।

सन् १९८८ ई. में 'अलका सारावगी' का उपन्यास *'कलि कथा बाइपास'* प्रकाशित हुआ। इसमें 'सारावगी जी' ने एक मारवाडी परिवार की पाँच पीढियों की संघर्ष की कहानी प्रस्तुत की है। इस कहानी में प्लासी युद्ध में अंग्रेजों का साथ देने वाले अमीचन्द से लेकर बाबरी ढाँचा विवाद तक की कहानी ही नहीं, वरन् लालू, राबडी, सोनिया आदि के प्रसंग भी इसमें सम्मिलित किए गए है।

'अलका जी' के उपन्यासों के साथ ही 'भगवान दास मोरवाल' का *'काला पहाड'* (१९९९) प्रकाशित हुआ। इसमें देश में बढती हुई साम्प्रदायिकता पर गहरी संवेदना व्यक्त की है। सत्ता और धन-सम्पति पाने के लिए राजनीतिक और साम्प्रदायिक शक्तियाँ किस प्रकार आम आदमी को गुमराह कर उसकी शान्ति और चैन छीन लेती हैं तथा उसकी जिन्दगी को नरक समान बना देती है, यहीं इस उपन्यास का कथ्य है। *'काला पहाड'*के पश्चात् भी 'मोरवाल जी' के और उपन्यास प्रकाशित हुए जिनमें *'रेत'*प्रमुख है। *'रेत'*उपन्यास में भी स्त्रियों की समस्या का अंकन किया है, उनकी दूर्दशा को केन्द्र में रखकर उपन्यास रचना की गई है।

अतः प्रथम अध्याय में हमने उपन्यासों के विकास को समयानुसार चार भागों में विभाजित कर अध्ययन किया है। अध्ययन करनें पर पता चलता है, कि बीसवीं शताब्दी के पश्चात् के उपन्यासकारों की केन्द्रीय सोच समय-समय पर बदलती रही हैं। उनके जीवन जीने के मूल्य भी बदलते रहें हैं। औपनिवेशिक पराधीनता से देश की मुक्ति के पश्चात् हिन्दी उपन्यास के सामने नये यथार्थ का एक ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ, जिसमें उसके बहुमुखी विचरण की अनन्त सम्भावनाएँ थी। अपने उपर किये गये अध्ययन यात्रा में हिन्दी उपन्यास ने देश के बदलते हुए जीवन यथार्थ को उसके पूरे विस्तार और विविधता में गहन संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। इस अवधि में परिमाण और प्रकार दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास का अभूतपूर्व विकास हुआ है। पिछली आधी सदी में गाँवों की वास्तविक जिन्दगी और उसमें आए बदलाव, नारी की परम्पराओं से चली आ रही दुख भरी कहानी, उसके रूपान्तरण एवं सबलीकरण की प्रक्रिया, दलितों व मजदूरों की नरक के समान जिन्दगी और उनके उठ खडे होने की सच्चाई, समाज के पिछडे वर्ग का विद्रोह, मध्यवर्ग का यथार्थ, शिक्षा जगत की विकृतियाँ, राजनीति के क्षेत्र में आयी गिरावट आदि हिन्दी उपन्यास में अपने यथार्थ रूप में दिखाई देते हैं। इसके साथ ही भारतीय इतिहास और पुराना साहित्य भी उपन्यास का केन्द्र बिन्दू बना है। अतः मुख्य रूप से हिन्दी उपन्यासों की केन्द्रीय सोच अनेक समस्याओं, रीति रिवाजों, ग्रामीण अँचलों, प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करती है। साथ ही मनुष्य के समय के साथ बदलते स्वभाव का भी वर्णन करना है।